मारवाड़ से मुगलों के सम्बन्ध

लेखक
डॉ. वी. एस. भार्गव
इतिहास विभाग, राजकीय महाविद्यालय
कोटा



राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
जयपुर

शिक्षा तथा समाज-कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, की विश्वविद्यालय ग्रन्थ योजना के अन्तर्गत राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी द्वारा प्रकाशित :

प्रथम संस्करण—१९७३

मूल्य—५.००

प्रकाशक :
राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
ए-२६/२ विद्यालय मार्ग, तिलक नगर
जयपुर—४

मुद्रक :
ओरियन्टल प्रिन्टर्स एन्ड पब्लिशर्स,
दगड़ वालों का रास्ता, चाँदपोल बाजार,
जयपुर—१

प्रस्तावना

भारत की स्वतन्त्रता के बाद इसकी राष्ट्रभाषा को विश्वविद्यालय शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रश्न राष्ट्र के सम्मुख था। किन्तु हिन्दी में इस प्रयोजन के लिए अपेक्षित उपयुक्त पाठ्य-पुस्तकें उपलब्ध नहीं होने से यह माध्यम-परिवर्तन नहीं किया जा सकता था। परिणामतः भारत सरकार ने इस न्यूनता के निवारण के लिए 'वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दावली आयोग' की स्थापना की थी। इसी योजना के अन्तर्गत १९६९ में पाँच हिन्दी भाषी प्रदेशों में ग्रन्थ अकादमियों की स्थापना की गई।

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी हिन्दी में विश्वविद्यालय स्तर के उत्कृष्ट ग्रन्थ-निर्माण में राजस्थान के प्रतिष्ठित विद्वानों तथा अध्यापकों का सहयोग प्राप्त कर रही है और मानविकी तथा विज्ञान के प्रायः सभी क्षेत्रों में उत्कृष्ट पाठ्य-ग्रन्थों का निर्माण करवा रही है। अकादमी चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अन्त तक तीन सौ से भी अधिक ग्रन्थ प्रकाशित कर सकेगी, ऐसी हम आशा करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक इसी क्रम में तैयार करवायी गई है। हमें आशा है कि यह अपने विषय में उत्कृष्ट योगदान करेगी।

इस पुस्तक की समीक्षा के लिए अकादमी डॉ. दशरथ शर्मा, जोधपुर की आभारी है।

चंदनमल बैद
अध्यक्ष

सत्येन्द्र
निदेशक

प्राक्कथन

मारवाड एण्ड मुगल एम्परर्स नामक शोध-प्रबन्ध की भूमिका लिखते समय राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर के भूतपूर्व उपकुलपति डाक्टर मोहनसिंह मेहता ने लिखा था कि लेखक ने सरल भाषा मे इतिहास के उन अज्ञात तथ्यो पर प्रकाश डाला है जिनमे भारतीय इतिहास के अनेक पहलू भी आलोकित हुए हैं। इस शोध प्रबन्ध से पहले लोगो को यह ज्ञान नही था कि खानवा के युद्ध म मेवाड की सेना के साथ-साथ मारवाड की सेना ने भी सक्रिय भूमिका निभाई थी। राव मालदेव को मुगल सम्राट् हुमायु के सदर्भ में एक विश्वासघाती माना जाता था। शेरशाह ने मालदेव पर आक्रमण करने से पूर्व पूर्ण सतर्कता से काम लिया था। उसके उत्तराधिकारी चन्द्रसेन ने अकबर के साम्राज्यवाद से टक्कर लेकर भी अपने-आपको मारवाड के इतिहास मे विस्मृत कर दिया। मोटा राजा उदयसिंह ने उसकी पुत्री भानमती उपनाम जोधाबाई का विवाह शाहजादा सलीम के साथ किया। जोधाबाई के पुत्र खुर्रम (मुगल सम्राट शाहजहाँ) के शासनकाल मे जोधपुर के महाराजा सूरसिंह, गजसिंह और जसवन्तसिंह प्रथम ने तन, मन, धन से मुगलो की सेवा की। सहयोग की एक शताब्दी मे मारवाड पर मुगल प्रभाव पडा। जसवन्तसिंह के मृत्योपरान्त उत्पन्न पुत्र अजीतसिंह को उसकी जीवन-रक्षा के लिए दुर्गादास राठौड इतिहास सरदारो का समर्थन प्राप्त करना पडा। औरगजेब की मृत्यु के पश्चात् अजीतसिंह मारवाड के राठौड राज्य की राजधानी जोधपुर पर अधिकार कर सका था। निर्बल मुगल सम्राटों के शासनकाल में अजीतसिंह ने उसकी पुत्री इन्द्रकु वर का डोला फर्रुखसीयर की सेवा मे भिजवाया। लेकिन उसने फर्रुखसीयर से ही प्रतिशोध लिया। अजीतसिंह सैय्यद भाइयों के साथ मिलकर सम्राट् निर्माता बन गया था। इस प्रकार मारवाड के राज्य के मुगलों के साथ गहरे सम्बन्ध रहे थे। इनको सर्वप्रथम फारसी, राजस्थानी और सस्कृत भाषा मे लिपिबद्ध स्रोतो के आधार पर सतुलित एव निष्पक्ष ढ ग से प्रस्तुत पुस्तक मे वर्णन किया गया है। पाद टिप्पणियो मे विवादास्पद विषयो का निराकरण करने का प्रयत्न किया गया है।

राजकीय महाविद्यालय, कोटा
मार्च, १९७३

डॉ वी एस भार्गव

विषय-सूची

सल्तनत युग में मारवाड़ का उत्थान और विकास

मोहम्मद गोरी के द्वारा ११९२ में पृथ्वीराज की पराजय भारतीय इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। परिणामस्वरूप अजमेर के चौहान साम्राज्य का अन्त हो गया। उसके बाद छोटे-छोटे नए राज्य राजस्थान मे स्थापित हो गए। अरावली के पश्चिमी भाग मे इसी समय राठौडों का राज्य स्थापित हुआ था।[1] राठौड राज्य की स्थापना दिल्ली मे दास सुलतान इल्तुतमिश के सिंहासनारोहण के समय हुई। यह माना जाता है कि १२१२ ईसवी के लगभग सीहा ने मारवाड मे पदार्पण किया था।[2] इस भूमि पर उस समय बालेचा चौहानो के अतिरिक्त मोहिल और गोहिल जाति के राजपूत भी निवास करते थे जो पाली के पल्लीवालो को तग किया करते थे।[3] पल्लीवाल तत्कालीन राजस्थान की एक उन्नतिशील व्यापारिक जाति थी। इनकी सीहा ने रक्षा की। रक्षा करते हुए सीहा १२७३ ईसवी में वीर गति को प्राप्त हो गया।[4] उसके अधिकारियो को इस प्रदेश मे बसने का बहाना मिल गया। आस्थान ने, जो सीहा का पुत्र और उत्तराधिकारी था, खेड़ को विजय करके राठौडो का मूल निवास स्थान मारवाड मे निश्चित किया।[5] आस्थान के उत्तराधिकारियो ने खेड को केन्द्र बनाकर मारवाड की भूमि मे अपना प्रभाव क्षेत्र विस्तृत किया था। उन्हें सर्वप्रथम मण्डौर के प्रतिहारो के विरुद्ध सघर्ष करना पडा। मध्यकालीन भारत के इतिहास मे इस समय दिल्ली के राजसिंहासन पर महत्त्वाकाक्षी तथा शक्तिशाली सुलतान विराजमान थे। अतएव राठौडों को इन सुलतानो के विरुद्ध भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सघर्ष करना पडा। धूहड के पुत्र एव उत्तराधिकारी रायपाल ने अलाउद्दीन खिलजी की मृत्यु के पश्चात् मण्डौर को प्राप्त करने के लिए सघर्ष प्रारम्भ किया था।[6] परन्तु इसमे रायपाल को सफलता नही मिली। १३११ ईसवी तक अलाउद्दीन खिलजी सिवाना और जालौर को विजय कर चुका था। इन विजयों को सगठित करने के लिए उसने योग्य कर्मचारी भी नियुक्त कर दिए थे। अतएव रायपाल के लिए मण्डौर को प्राप्त करना सुगम नही था। एक तरफ पूर्व और उत्तर मे राज्य विस्तार करने की अभिलाषा अपूर्ण रही और दूसरी ओर ईडर के राज्य से सीहा के उत्तराधिकारियों के सम्बन्ध विच्छेद हो गए। ईडर को आस्थान ने विजय किया था और उसका प्रबन्ध लघु भ्राता सोनिग को सौंप दिया था।[7] रायपाल के शासन काल मे यह सम्बन्ध विच्छिन्न हो गए। रायपाल के अपूर्ण कार्य

को उसके १३ पुत्रों ने पूरा किया। इन १३ पुत्रों ने अपना प्रभाव क्षेत्र बढाकर छोटे-छोटे राज्य स्थापित कर लिए थे। कर्नल टॉड के अनुसार रायपाल की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारियों ने छापेमार अभियानो के द्वारा अपने राज्य को विस्तृत कर लिया था। जहा कही उन्हे सफलता की किञ्चितमात्र आशा दिखाई देती थी, उसी दिशा मे वे अपना विस्तारवादी कार्यक्रम क्रियान्वित करने मे जुट जाते थे।[८] इस प्रकार राव चूण्डा के सिंहासनारोहण के समय तक राठौडों का मडोर, नागौर, खाटू, डीडवाना, सांभर, अजमेर और नाडोल पर अधिकार स्थापित हो चुका था।[९] रायपाल के उत्तराधिकारी वीरमदेव की मृत्यु १३८३ ईसवी में हुई थी और उसी के बाद वीरम का पुत्र चूण्डा सिंहासनारूढ हुआ था। दिल्ली सल्तनत के इतिहास म यह पतन का युग था। फीरोज तुगलक के निर्बल उत्तराधिकारी इस स्थिति मे नही थे कि वे राठौडो के आक्रमक कायक्रम को अवरुद्ध कर सकते। अतएव महत्वाकांक्षी राठौड शासकों—कान्हा, जालणसी और छाडा के लिए राज्य विस्तार करना सुलभ हो गया।[१०]

जैसलमेर का भाटी राज्य प्राचीन काल से ही राठौडों के विस्तार मे एक बहुत बडा अवरोध रहा है। इस राज्य के कतिपय शासकों ने राठौडो के विरुद्ध सिन्ध प्रदेश के मुस्लिम सूबेदारो से भी सहायता प्राप्त की थी। इसका दुष्परिणाम यह निकला कि कान्हा और जालणसी अपने पडौसियो के विरुद्ध सघर्ष करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए।[११] जैसलमर और मारवाड के राठौडों का वैर चूण्डा के जीवन काल मे अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका था। भाटियो ने साखलाओं को अपनी ओर मिलाकर चूण्डा की १४२३ ईसवी मे हत्या करादी। इसके बाद मारवाड मे राजगद्दी के लिए मनमुटाव प्रारम्भ हो गया। साता को चूण्डा के ज्येष्ठ पुत्र ने अपदस्थ करके १४२७ ईसवी म मारवाड की गद्दी पर अपना अधिकार कर लिया था।

इस समय नागौर में मुस्लिम शक्ति का भी उत्थान हो रहा था। अतएव नागौर के मुस्लिम शासको के विरुद्ध युद्ध करना राठौडो के लिए आवश्यक हो गया।[१२] जालोर मे भी पठान राज्य का उत्थान हो रहा था। उसके विरुद्ध भी सघर्ष करना अनिवार्य हो गया था। राव रणमल ने ग्यारह वर्षीय शासन काल म इस भूमिका को उल्लेखनीय ढग से निभाया था। उसी के सतत प्रयत्नों के परिणामस्वरूप नागौर, नाडोल, जैतारण और सोजत पर राठौडो का अधिकार स्थापित हुआ था।[१३] दिल्ली सल्तनत के इतिहास मे इस समय सैय्यद सुलतानों का शासन था जो अपनी ही समस्याओं म उलझे हुए थे। इनके लिए राजस्थान के प्रदेश मे हस्तक्षेप करना सम्भव नही था। परन्तु १४३८ मे चित्तौड के किले मे राव रणमल की मेवाड के सरदारो के द्वारा हत्या करदी गई थी। इस हत्या के

परिणामस्वरूप (१) मारवाड के राठौड शासकों की विस्तारवादी योजनाएं शिथिल पड गईं (२) मेवाड और मारवाड़ का मन-मुटाव प्रारम्भ हो गया। इन कारणों से मारवाड के राठौड बाद के दो दशक अतिरिक्त प्रदेशों को विजय नहीं कर सके।

रणमल की हत्या के पश्चात् उसके सुविख्यात पुत्र जोधा को जान बचाकर मेवाड से भागना पडा था। मारवाड की भूमि में पहुँचने के बाद उसने शक्ति सगठित करना प्रारम्भ किया। शक्ति सगठन करने में उसे १५ वर्ष का समय लग गया।[१४] १४५३ ईसवी तक वह मेवाड की सेनाओं को मारवाड की भूमि से खदेडने मे सफल हुआ था। तत्पश्चात् १४५९ ईसवी में उसने जोधपुर शहर और दुर्ग की स्थापना की थी।[१५] जोधा के शासन काल के सम्बन्ध में पोसुण्डी शिलालेख प्रकाश डालता है। इस शिलालेख से पता चलता है कि १४४७ ईसवी के लगभग उसने काशी और गया की तीर्थयात्रा की थी। उस समय इसने जौनपुर के शर्की सुलतान के द्वारा हिन्दुओं से तीर्थयात्रा कर की वसूली करवाना बन्द करवा दी थी।[१६] जोधा ने ही आधुनिक छापर और द्रोणपुर पर अपना अधिकार स्थापित किया था। मार्ग म नागौर पडता है, अतएव उसने नागोर पर भी अपना अधिकार अवश्य स्थापित किया होगा।[१७] सौभाग्य से मेवाड का शासक राणा उदयसिंह सन् १४६२ में सिंहासनारूढ हुआ। उसने मेवाड और मारवाड के वैमनस्य को समाप्त करने के लिए अथवा मेवाड के आन्तरिक मामलो मे जोधा के निरन्तर हस्तक्षेप को बन्द करने के लिए अजमेर और साभर मारवाड को दे दिए थे।[१८] यह घटना कुम्भा की मृत्यु के बाद की है। १४६१ ईसवी मे जोधा के पुत्रो (वरसिंह और दूदा) न मेडता और उसके आस-पास के २६० ग्रामों को विजय करके अपना अधिकार जमा लिया था।[१९] जोधा के अन्य पुत्र भी साहसी नवयुवक थे। वरसिंह और दूदा का अनुकरण करके बीका न जागल देश की भूमि पर अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया जो आधुनिक काल म बीकानेर के नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रकार १४८९ मे जोधा की मृत्यु के समय मारवाड के राठौड राज्य का मन्डौर, सोजत, गोडवाड के कुछ भाग, शिव, सिवाना, साम्भर, अजमेर और शायद नागोर पर अधिकार हो चुका था।[२०] जोधा के शासन काल मे राठौडो के राज्य विस्तार का अधिकाश श्रेय उसके १४ पुत्रो को दिया जाता है जो वीर एव साहसी नवयुवक थे।

जोधा की मृत्यु के पश्चात् क्रमश सातल और सूजा मारवाड के शासक हुए। दोनो आन्तरिक शान्ति और व्यवस्था स्थापित करने म ही व्यस्त रहे। लेकिन फिर भी सिन्धलों से खानोद और रायपुर छीनकर इन्होंने अपने राज्य मे मिला लिये। सातल की मृत्यु के बाद १५१५ मे उसका पौत्र गागा सिंहासनारूढ़ हुआ था गागा भारत मे मुगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर का समकालीन शासक था इसने १५३१ ईसवी तक मारवाड पर शासन किया था।

गागा के सिंहासनारोहण के समय मारवाड की भूमि पर सीहा के वशज फैल चुके थे। राजपूतों की अन्य शाखाओं के राज्यो का अन्त करके राठौड राजाओं ने मारवाड की भूमि को उनकी परम्परागत मातृभूमि बना दिया था। जोधपुर का दुर्ग इनका प्रेरणा स्रोत बन गया था। अतएव राव गागा को मारवाड के शासक के रूप मे दोहरी भूमिका निभाना था। प्रथम उसे अपने वश-पराम्परागत राज्य की आन्तरिक और विदेशी शत्रुओ से रक्षा करनी थी। द्वितीय उसे अपने पैतृक राज्य की सीमाओ को भी बढाना था। एक शासक के रूप मे राव गागा की शक्ति का आधार मारवाड के सामन्त थे। इन अधिकाश सामन्तों के मारवाड के शासक के साथ रक्त सम्बन्ध थे। राठौड जाति के होने के उपरान्त भी ये लोग अपने राजा के प्रति स्वामिभक्त नहीं थे। एक ही कुल और वश के होने के नाते राजगद्दी के लिए सघर्ष करने मे वे चूकते नहीं थे। इसका कारण यह था कि १५१५ ईसवी तक मारवाड राज्य मे उत्तराधिकार की सुनिश्चित परम्परा स्थापित नही हो सकी थी। अतएव वश परम्परागत ईर्ष्या और विद्वेष मारवाड के इतिहास मे एक ऐसी अप्रिय कहानी है जिसने इस राज्य के उत्थान एव विकास के युग मे इतिहास को सक्रिय रूप से प्रभावित किया था। सघर्ष और प्रतिसघर्ष की कहानी को मुगल बादशाहो के साथ सम्बन्धो के वर्णन मे यथा स्थान लिपिबद्ध किया जाएगा।

---

१ परम्परा के आधार पर मारवाड के राठौड राजाओं के ख्यात और वशावली लेखक यह मानते आए हैं कि कन्नौज के गहड़वाल परिवार का वशज भाग्य और सम्पदा की तलाश में घूमता फिरता पाली (मारवाड) पहुँचा। उसे वहा के पल्लिवाल ब्राह्मणों ने अपनी रक्षा के लिए आमन्त्रित किया। उस समय पल्लिवालों को बालेचा चौहानों ने पीडित कर रखा था तत्पश्चात् सीहा पाली के पडौस मे खेड के स्थान पर बस गया। इस प्रकार सीहा के मारवाड की भूमि मे आगमन से राठौड राज्य की स्थापना मानी जाती है। (जोधपुर ख्यात जि० १ पृ० ४, कविराजा ख्यात जि० २, पृ० २२, टाड जि० २ पृ० ६४०, रेऊ जि० पृ० ३७)

आधुनिक इतिहासकार, ख्यातों के इस परम्परागत वर्णन को स्वीकार नही करते (देखिए डॉ० रमाशकर त्रिपाठी कृत हिस्ट्री आफ कन्नौज पृ० २९३-३००, डॉ० रमानियोगी-कृत हिस्ट्री आफ गहड़वाल डायनेस्टी अथवा डॉ० अल्तेकर कृत दी राष्ट्रकूटाज एण्ट देयर टाइम्स) मारवाड के आधुनिक इतिहासकार (स्वर्गीय रेऊजी) ने सरकारी इतिहासकार होने के नाते सीहा की वशावली कन्नौज के पुरातन राजवश से मिलाने का प्रयत्न अवश्य किया था। रेऊजी का उद्देश्य ख्यात लेखको से भिन्न नही था। ऐसी परिस्थिति में यही निष्कर्ष निकाला जायगा कि मारवाड के राठौड़ो के कन्नौज के गहड़वालो अथवा राष्ट्रकूटो के साथ रक्त सम्बन्ध की पृथक रूप से खोजबीन होनी चाहिए ताकि इस महत्वपूर्ण समस्या का समाधान किया जा सके।

२ डॉ० ए. सी. बैनर्जी "मिडाइवल स्टडीज" के पृ० ४० पर लिखते हैं कि सीहा १२१२ ईसवी में मारवाड़ आया था। इसकी पुष्टि टॉड, प० रेऊ और रामकरण आसोपा की कृतियो से भी होती है।

३. टॉड जि० २ पृ० ६४१

४. इण्डियन एन्टीक्वेरी जि० ३ पृ० ४२ पर बीठू शिलालेख प्रकाशित हुआ है। यह शिलालेख कार्तिक बदी १२ वि० स० १३३० सोमवार तदनुसार ६ अक्टूबर १२७३ ईसवी का है। क्योंकि यह शिलालेख समाधि स्थल से प्राप्त हुआ है अतएव विद्वान् यह मानते हैं कि सिन्धी मुसलमानो से लडते हुए सीहा वीरगति को प्राप्त हुआ होगा। बगलार नामा और तुहफतू-ए-किराम में भी इसकी पुष्टि होती है (देखिए बेगलार नामा पृ० ४३ और तुहफतू-ए किराम पृ० ६१-६२ एव रेऊ जि० १ पृ० ३६)
५. नगर शिलालेख से इसकी पुष्टि होती है जो १६२६ ईस्वी का है। मारवाड की प्राचीन वही, नेणसी की ख्यात और मआसिर-उल-उमरा से भी इसकी पुष्टि होती है (देखिये वही पृ० १३ अ, नैणसी की ख्यात जि० २ पृ० ५६-५७ और मआसिर उल उमरा जि० २ पृ० ६१४)
६. अलाउद्दीन खिलजी ने १० नवम्बर १३०८ के दिन सिवाना के शासक सीतलदेव को पराजित करके उस किले पर अपना अधिकार जमा लिया था (देखिये-अमीर खुसरो कृत खजाइन पृ० ७४-७८ और ब्रिग्स अनूदित तारीख-ए-फरिस्ता जि० १ पृ० ३७०) तदुपरान्त अलाउद्दीन ने जालौर के कान्हडदे को पराजित किया और जालौर पर अपना अधिकार जमा लिया। (देखिए कान्हडदे प्रबंध पृ०-१ और के. एस. लाल पृ० १३५-३६) लेकिन अलाउद्दीन ने मारवाड की दिशा मे बढने का प्रयत्न नही किया था। इसका एक कारण यह हो सकता है कि वह जालौर को विजय करने मे जुटा रहा। यदि इस समय वह धूहड के साथ छेड छाड करता तो मारवाड जालौर के शासक सगठित हो सकते थे। धूहड अपने काल का एक शक्तिशाली शासक था। इसी ने सर्वप्रथम "राव" की उपाधि धारण की थी जो मारवाड के शासक मालदेव की मृत्यु तक धारण करते रहे। धूहड की मृत्यु १३०६ ईसवी म हो चुकी थी (देखिए तिरसिंह गढ़ी शिलालेख, इण्डियन एन्टीक्वेरी, जि० ४० पृ० ३०१ पर प्रकाशित) उसकी मृत्यु के बाद अलाउद्दीन ने मण्डोर पर अधिकार किया होगा जो उस समय तक मारवाड की राजधानी थी। यह निष्कर्ष मैंने इसलिए निकाला है क्योंकि १३०७ ईसवी के पाण्डुवा शिलालेख में योगनीपुर के अलावदी को मण्डोर का शासक लिखा गया है, सम्भवत इसी शिलालेख के आधार पर टॉड और डॉ० के एस. लाल ने अलाउद्दीन खिलजी को मण्डोर का भी शासक लिख दिया है, लेकिन अलाउद्दीन का मण्डोर पर अधिकार एक अल्पकालीन घटना थी। ख्यातों के अनुसार रायपाल को मण्डोर प्राप्त करने के लिए दिल्ली के सुल्तानो के विरुद्ध सघर्ष करना पडा था। इसलिए अलाउद्दीन की स्वल्पकालीन मण्डोर विजय को ऐतिहासिक तथ्य के रूप में स्वीकार किया जा सकता है (देखिए-जोधपुर ख्यात जि० १ पृ० २०, दयाल दास ख्यात जि० १ पृ० ६० और वीर विनोद पृ० ८०३)
७. वही-पृ० १३ अ, जोधपुर ख्यात जि० १ पृ० १७-१८, टॉड जि० २ पृ० ९४३ और वीर विनोद पृ० ७६६। सोनिंग के उत्तराधिकारी लगभग १७१८ ईसवी तक ईडर के प्रदेश पर शासन करते रहे (बोम्बे गजेटियर-जि० ६ भाग-१ पृ० १२८)
८ टॉड जि० २ पृ० ९४४
९ वही १५ (ब), नेणसी जि. २ पृ. ८६-९०, कविराजा ख्यात जि २ पृ, २१, जोधपुर ख्यात जि १ पृ. ३०-३१, दयाल दास ख्यात जि, १ पृ. १२४, बाँकीदास ख्यात पृ ६ और वीर विनोद पृ ८०३

उपरोक्त ख्यातो में मण्डोर और नागौर की वास्तविकता विजय का कही उल्लेख नही है परन्तु आधुनिक इतिहासकारो (टॉड, ओझा, रेऊ और आसोपा) ने लिखा है कि छाडा ने मण्डोर और नागौर विजय कर लिया था। क्योंकि यह प्रदेश छाडा के उत्तराधिकारियों के

अधिकार मे थे इसलिए मैं भी यही मानता हूँ कि मण्डोर और नागौर को छाडा ने विजय कर लिया होगा।

नाडोल आधुनिक पश्चिमी रेलवे में जावली नामक स्टेशन से ८ मील के फासले पर २५ अक्षांश, २२ देशान्तर उत्तर एवं ७३ अक्षांश, २० देशान्तर पूर्व के बीच में स्थित है। नाडोल की विजय का उल्लेख ■ दशरथ शर्मा की अर्ली चौहान डाइनेस्टीज के पृ. २४६ पर भी है।

१० वही १९ (ब) १७ (अ), नेणसी जि. २ पृ ८६-९०, कविराजा-ख्यात जि. २ पृ. २६ जोधपुर ख्यात जि १ पृ ३६-३१, दयालदास ख्यात-जि १ पृ १२४, बाकीदास ख्यात पृ ६, वीर विनोद पृ ८०३

छाडा की मृत्यु जैसलमेर के भाटी शासक के विरुद्ध युद्ध करते हुए हुई थी। जालणसी सिन्ध के मुसलमानो और जैसलमेर के भाटियो के विरुद्ध लडते हुए मारा गया था। बैगलारनामा को पढने से पता लगता है कि सिन्ध के मुसलमान जैसलमेर के भाटी राजाओं के मित्र थे। यह सम्भव है कि मुलतान के मुस्लिम सूबेदार ने भाटी मित्रो की सहायता के लिये सलीम खा के नेतृत्व मे सेना भेजी हो जिसका मुकाबला करते हुए चूण्डा वीरगति को प्राप्त हुआ था। (देखिए बैगलार नामा अग्रेजी अनुवाद पृ. ४५) छाडा ने मण्डोर और नागौर के आस पास के भू भाग को ही विजय किया होगा। उपरोक्त स्रोत मे मण्डोर और नागौर की वास्तविक विजय का उल्लेख पढने को नहीं मिलता लेकिन गजनेर शिलालेख से पता चलता है कि १३८३ ईसवी मे वीरम की मृत्यु जोहियो के विरुद्ध लडते हुए लखवेरा के आसपास हुई थी (देखिए—१३८३ ईसवी का गजनेर शिलालेख, वीर विनोद के पृ. ८०२ पर उद्धृत) अतएव यह निष्कर्ष निकालना कठिन नही है कि वीरम का नागौर पर अधिकार हो चुका था।

११. बाकीदास ख्यात पृ ४, रेऊ मारवाड का इतिहास जि १ पृ ४६ और जनरल आफ इण्डियन हिस्ट्री १९५१ पृ. ३१७ पर प्रकाशित लेख।

१२ वही पृ १८ (अ) बेवामा का रासा पृ २६ छन्द ३४० से ३७०, हर विलास शारदा कृत महाराणा कुम्भा पृ २९

१३ नैणसी जि १ पृ. १२४ और जि २ पृ ११५, जोधपुर ख्यात जि १ पृ. १६ बाकीदास ख्यात पृ. ७, वीर विनोद पृ ८०५, तारीख-ए-पालनपुर जि. १ पृ ५-६ टाड जि १ पृ ६७० नाडौल पर सोनगरा चौहानो का शासन था। जैतारण पर सिन्धलों का अधिकार था। सोजत पूलो के अधिकार में था। जालौर में हसन खा पठान के वंशज अपना शासन स्थापित कर चुके थे।

पश्चिमी रेलवे के सोजत नामक रेलवे स्टेशन से लगभग ७ मील उत्तर पश्चिम मे सोजत २५ अक्षाश ५६ देशान्तर उत्तर और ७३ अक्षांश ४० देशान्तर पूर्व में स्थित है।

बार रेलवे स्टेशन से १४ मील उत्तर पश्चिम में २६ अक्षांश १३ देशान्तर उत्तर और ७३ अक्षांश ७६ देशान्तर पूर्व मे वर्तमान जोधपुर शहर से लगभग ६६ मील की दूरी पर जैतारण स्थित है।

१४ जोधपुर ख्यात जि. १ पृ. ३६ कविराजा ख्यात जि २ पृ ४२ और ४५ टॉड जि २ पृ ९४७, वीर विनोद पृ ३२३-२८ ओझा जि. १ पृ २३७ और हर बि शारदा कृत महाराणा कुम्भा पृ. ७६

१५ वही पृ. २३ (अ), नैणसी जि. २ पृ. १३१, जोधपुर ख्यात जि. १ पृ. ४६ और वीर विनोद पृ. ८०६

मण्डोर से ६ मील दक्षिण में एक पहाड़ी के ऊपर शनिवार, १२ मई १४५६ के दिन जोधपुर के दुर्ग का शिलान्यास किया गया था। इस पहाड़ी की तलहटी में आधुनिक जोधपुर शहर बसा हुआ है। इम्पीरियल गजेटियर के वर्णन से इस कथन की पुष्टि होती है 'जोधपुर दुर्ग राजपूताना में सर्वाधिक सुन्दर दुर्ग है, यह समस्त शहर की रक्षा करता है। एक पृथक् पहाड़ी पर पृथ्वी के धरातल से ४०० फुट की ऊंचाई पर दुर्ग स्थित है। चारों तरफ समतल भूमि है। अतएव दूर से ही यह मानवीय दृष्टि को आकर्षित कर लेता है।" इम्पीरियल गजेटियर पृ १९७

१६ गोमूण्डी शिलालेख जरनल आफ एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल की जि. ५६ भाग एक और दो में १८८७ ईसवी में प्रकाशित किया गया था।

१७ वही पृ. २५ (अ) दयालदास ख्यात जि. १ पृ, १८३, जोधपुर ख्यात जि. १ पृ. ४६, कयाम खां रासा पृ. १० और ओझा जि. १ पृ. २४५।

रतनगढ़ से मेड़ता जाने वाली उत्तरी रेलवे के छापर रेलवे स्टेशन से ४ मील पूर्व में छापर-द्रोणपुर स्थित है। राणा कुम्भा ने १४५५ ईसवी में नागौर पर अपना अधिकार कर लिया था। इस समय नागौर की गद्दी के लिए दो प्रतिद्वन्द्वियों में संघर्ष चल रहा था। एक पक्ष को गुजरात के सुलतान ने सहायता दी। परिणामस्वरूप १४५७ ईसवी में नागौर कुम्भा के हाथ से निकल गया। कुम्भा के जीवन का यह संकटमय समय था। वह गुजरात और मालवा के मुस्लिम सुलतानों की संयुक्त सेनाओं के विरुद्ध युद्ध करने में व्यस्त था अतएव जोधा ने परिस्थितियों से लाभ उठा कर नागौर पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया होगा। लेकिन यह स्वल्पकालीन अधिकार था। निजामुद्दीन अहमद और फरिश्ता लिखते हैं कि सिकन्दर लोदी के शासन काल में नागौर के मुस्लिम शासक मोहम्मद खां ने १५०१ ईसवी में दिल्ली के लोदी सुल्तान की अधीनता स्वीकार की थी।

कुम्भा की नागौर विजय का उल्लेख कीर्ति स्तम्भ शिलालेख में है जिसे ओझाजी ने उदयपुर राज्य के इतिहास जि में और शारदाजी ने "महाराणा कुम्भा" में वर्णन किया है। कविराजा श्यामलदास ने भी इसे वीर विनोद में उद्धृत किया है। निजामुद्दीन अहमद का ग्रन्थ "तबकात-ए-अकबरी" जिसका बी एन डे ने अंग्रेजी में अनुवाद किया है लेकिन प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक ने तबकात का फारसी संस्करण देखा है जो नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित हुआ था। फरिश्ता के ग्रन्थ का ब्रिग्स महोदय अंग्रेजी में ४ जिल्दों में अनुवाद कर चुके हैं। अंग्रेजी अनुवाद की प्रथम जिल्द के पृ. ५८३ और तबकात के पृ. ३३१ पर मोहम्मद खां के समर्पण का उल्लेख है।

१८. टॉड ऐनल्स आफ मेवाड़ पृ. ४०, ब्रुक्स, हिस्ट्री आफ मेवाड़ पृ. १२ और ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास जि. १ पृ. २४३ इसकी पुष्टि "जयमल वंश प्रकाश" पृ. ६२ से भी होती है।

१९. वही पृ २५ (अ), कविराजा ख्यात जि. २ पृ. ३४ जयमल वंश प्रकाश पृ. ६० चतुरकुल चरित्र पृ. १६ टॉड जि. २ पृ. ९५०

२०. रेऊ मारवाड़ का इतिहास जि. १ पृ १०२

———

२

विरोध का युग

१ राव गागा और बाबर

राव सूजा की मृत्यु के बाद उसका पौत्र[१] गागा नवम्बर १५१५ में सिंहासनारूढ हुआ। उस समय मारवाड राज्य में जागीरदारों का प्रभाव अधिक था। इसीलिए गागा को सोजत का प्रदेश अपने बडे भाई बीरम को जागीरदारों के कहने से देना पडा था।[२] मारवाड के आसपास के भू-भाग पर कुछ स्वतन्त्र राज्य स्थापित थे। उदाहरण के लिए मेडता पर बीरम दूदावत के वशजों का अधिकार था, नागौर पर सरखेल खा और उसके लडके दाऊद खा का अधिकार था। जालौर और साचौर सिकन्दर खा पठान की प्रभुसत्ता में थे जो गुजरात के सुलतानो का स्वामिभक्त था। शेष भू-भाग जागीरो में विभाजित था।[३] जागीरदार एक ही रक्त और वश के उत्तराधिकारी होने के नाते शासक के साथ समानता का व्यवहार करते थे। सोलहवीं शताब्दी के प्रथम चरण में मारवाड का राव जागीरदारो में केवल ज्येष्ठ भ्राता के रूप में ही स्वीकार किया जाता था। इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि १५१५ में मारवाड का राजसिंहासन गागा के लिए फूलों की सेज नही था। परन्तु राजनैतिक परिस्थितियाँ अनुकूल थी और इसलिए गागा को अपना प्रभावक्षेत्र बढाने का अवसर प्राप्त हो गया। इसने पडौसी राजपूत राजाओ के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करके मारवाड के वश परम्परागत राज्य को शक्ति सम्पन्न बनाया था।[४]

१५१७ ईसवी में लोदी सल्तनत के शक्तिशाली सुलतान सिकन्दर की मृत्यु हो गई। उसका उत्तराधिकारी इब्राहीम लोदी निर्बल सुलतान था। इसके साथ-साथ इब्राहीम को गहन समस्याओ का भी निरन्तर रूप से सामना करना पड रहा था। इसलिए वह इस स्थिति में नही था कि राव गागा के राज्य में हस्तक्षेप करता। इब्राहीम लोदी का प्रतिद्वन्द्वी मेवाड का राणा सागा, मारवाड के राव गागा का बहनोई था। वैवाहिक सम्बन्धो के कारण गागा और सागा के शासन काल में मेवाड और मारवाड के राजनैतिक सम्बन्ध मित्रतापूर्ण बने रहे। इसलिए गागा ने मेवाड की सहायतार्थ ईडर[५] और खानुवा[६] के युद्धो में मारवाड की सेनाएँ भेजी थी। यह तो सत्य है कि सागा के काल में मेवाड का राज्य शक्ति के चरम

शिखर पर पहुँच चुका था। कर्नल टॉड ने और मेवाड के अन्य इतिहासकारो ने सांगा को तत्कालीन राजस्थान का नेता बताया है। लेकिन जहा तक सागा के शासन काल मे मेवाड और मारवाड के राजनैतिक सम्बन्धो का प्रश्न है, दोनो राज्यो के सम्बन्ध मधुरतम इसलिए बने रहे थे कि दोनो राजघराने राजवशीय विवाह के बन्धन मे बन्धे हुए थे।

सांगा ने ईडर के निर्वासित राठौड राजा रायमल की सहायतार्थ १५११ ईसवी में गुजरात के सुलतान मुज्जफर शाह के विरुद्ध कूच किया था। उस समय डूगरसी बालावत को मेवाड के राजदूत के रूप मे मारवाड भेजा गया था। ख्यातों के अध्ययन से पता चलता है कि एक लम्बे वाद-विवाद के बाद राव गागा मेवाड की सहायतार्थ गुजरात के सुलतान के विरुद्ध सेना भेजने को तैयार हुआ था। ईडर के युद्ध मे मारवाड की सेनाओ का सेनापतित्व राव गागा ने स्वय किया था। ईडर का राव रायमल मारवाड के राव गागा का रक्त सम्बन्धी था। उसे राज्य सिंहासन की पुनः प्राप्ति करवाना गागा के अकेले बस की बात नही थी। अतएव जब सागा ने रायमल की सहायता के लिए कूच करने का निश्चय किया तो राव गागा सहर्ष तैयार हो गया। दूसरा कारण यह हो सकता है कि गागा जालौर के उत्तराधिकार सघर्ष मे रुचि रखता था। जालौर के स्वामी अलीशेर की मृत्यु के बाद वहा आतरिक विवाद उत्पन्न हो गया था। इस विवाद मे राव गागा ने गाजी खा की सहायता की थी। ईडर अभियान के बहाने जालौर के मार्ग से गुजरते समय वहा स्थिति का अध्ययन करना सुलभ हो गया होगा। इस अनुभव से फायदा उठा कर १५२५ ईसवी मे राव गागा ने जालौर के आतरिक सघर्ष मे भाग लिया।

१५२६ ईसवी मे बाबर ने पानीपत के युद्ध क्षेत्र मे दिल्ली के तत्कालीन सुलतान इब्राहीम लोदी को पराजित किया। उस समय तक मारवाड का राव गागा अपनी स्थिति को सुदृढ बना चुका था। मारवाड का राज्य तत्कालीन राजस्थान में मेवाड के बाद दूसरे स्थान का अधिकारी राज्य गिना जाता था। अतएव खानुवा युद्ध मे जाने से पहले राणा सागा ने राजपूती परम्परा के अनुसार राव गागा को भी निमन्त्रण भेजा था। कर्नल टॉड ने राणा सागा को १६वी शताब्दी के प्रथम चरण का प्रमुख राजपूत राजा लिखा है।[७] कर्नल टॉड के वर्णन को पढने से भी ज्ञात होता है कि आमेर और मारवाड के शासक सागा का प्रभुत्व स्वीकार करते थे। लेकिन गागा को सैनिक सहायता एक अधीनस्थ राजा के रूप मे नहीं दी थी। ऊपर कहा जा चुका है कि गागा और सागा एक-दूसरे के साले और बहनोई थे। इसके अतिरिक्त १५२६ ईसवी तक वे एक-दूसरे के सहयोगी रह चुके थे। अतएव सागा ने खानुवा के युद्ध से पहले पानोपेखन की राजपूती परम्परा को दुहराते हुए गागा से सैनिक सहायता मागी थी। गागा के लिए सहायता देना राजनैतिक दृष्टि

से भी वाछनीय था, क्योकि सागा को सभी प्रमुख हिन्दू और मुसलमान शासको ने सैनिक सहायता दी थी अतएव हरविलास शारदा के नायक हिन्दूपति राणा सागा को सर्व प्रभुत्व सम्पन्न शासक मानना आपत्तिजनक है। मारवाड के सदर्भ मे सागा को सर्व शक्तिमान शासक के रूप मे स्वीकार नही किया जा सकता।

राव गागा ने तीन हजार घुडसवारो की एक सेना सागा की सहायतार्थ भेजी थी। इस सेना का सेनापति गागा का पुत्र मालदेव था, यद्यपि कतिपय ख्यातो मे रणमल को मारवाड की सेना का सेनापति बताया गया है। यहा यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि मेडता के वीरमदेव ने जो सैनिक सागा की सहायतार्थ भेजे थे वे मारवाड की सेना से पृथक् थे। मेडता का राज्य सोलहवी शताब्दी के प्रथम चरण मे मारवाड के प्रभुत्व मे नही था, मेडता एक स्वतन्त्र राज्य था।

बाबर और राणा सागा के बीच खानुवा के मैदान में १६ मार्च, १५२७ के दिन निर्णायक युद्ध लडा गया था। इस युद्ध में मारवाड की सेना को राणा सागा ने बाम पक्ष म नियुक्त किया था।[८] शनिवार १६ माघ, के दिन प्रात काल ६ ३० बजे सागा की सेना ने युद्ध प्रारम्भ किया था। उस समय पहल मारवाड की सेना की ओर से की गई थी। युद्ध के दौरान जब राणा सागा मूर्च्छित हो गए तो उस समय उन्हें सुरक्षित स्थान (बसवा) तक पहुँचाने का कार्य मारवाड के राजकुमार मालदेव ने ही किया था।[९] इस प्रकार से खानुवा के युद्ध मे मारवाड का सक्रिय योगदान रहा था।

खानुवा की पराजय ने राजपूत सगठन को समाप्त कर दिया था। मेवाड के राजघराने का साहस कम हो गया था। लेकिन राव गागा की शक्ति पर खानुवा की पराजय का कोई विशेष प्रभाव नही पडा। इसके बाद ही उसने अपने बडे भाई वीरम को धोलहडे के युद्ध मे पराजित करके सोजत पर अपना अधिकार स्थापित किया था।[१०] सोजत की विजय से उत्साहित होकर गागा ने नागौर के शासक सरखेल खा और दौलत खा की सेनाओ का भी साहसपूर्वक सामना किया था। गागा के चाचा शेखा ने वशानुगत वैमनस्य का बदला लेने के लिए नागौर के मुस्लिम शासक को गागा के विरुद्ध उत्तेजित किया था अतएव राव गागा के लिए बराही और गागानी के बीच के मैदान म रक्षात्मक युद्ध लडना अनिवार्य हो गया था। यह युद्ध १५२६ मे लडा गया था। इस युद्ध मे शेखा मारा गया।[११] अतएव गागा के ऐश्वर्य की अभिवृद्धि हुई।

गागा के सोलह वर्षीय शासन काल का अन्त एक आकस्मिक दुर्घटना के कारण हुआ। २१ माघ, १५३१ के दिन जब वह मण्डौर के महलो में एक झरोखे मे बैठा हुआ शीतल वायु का आनन्द ले रहा था तब ही वह नीचे गिर पडा और उसकी तत्काल मृत्यु हो गई। मारवाड की प्राचीन ख्याते[१२] गागा की मृत्यु के लिए उसके महत्वाकाक्षी पुत्र मालदेव को उत्तरदायी ठहराती हैं। लेकिन मारवाड राज्य

के आधुनिक इतिहासकारों[13] ने गागा की मृत्यु का कारण उसकी अफीमची प्रवृत्ति को माना है। यह ठीक है कि राजपूतों में अमल-पानी के सेवन की प्रवृत्ति थी लेकिन गागा अफीम का इतना अधिक व्यसनी नहीं हो सकता जैसा स्वर्गीय प० विश्वेश्वर नाथ रेऊ और प० रामकरण आसोपा ने लिखा है। मालदेव एक आकांक्षावादी प्रवृत्ति का नवयुवक था। अतएव यह असम्भव नहीं हो सकता कि उसने गागा को झरोखे से धक्का दिलवा दिया हो। यह भी हो सकता है कि गागा असावधानी से बैठा हो और हवा के झोंके से स्वयं ही नीचे गिर पड़ा हो। मण्डौर के महल में स्थित वह झरोखा जमीन की सतह से लगभग २५ फुट ऊंचाई पर है। धरातल में ऊबड़ खाबड़ पत्थर बिछे हुए हैं। अतएव असावधानी के कारण भी मृत्यु हो जाना असंगत प्रतीत नहीं होता।

२. राव मालदेव और उसके समकालीन मुस्लिम शासक

राव गागा के पुत्र और उत्तराधिकारी मालदेव को समकालीन मुस्लिम इतिहासकारों ने हिन्दुस्तान का एक हशमत वाला शासक लिखा है।[14] १५३१ में मारवाड़ के शासक का अधिकार मण्डौर और सोजत के परगनों पर था। जोधपुर मारवाड़ की वंश परम्परागत राजधानी थी। लेकिन १५६२ ईसवी में मारवाड़ की सीमाएं राजस्थान के अधिकांश भू-भाग में फैली हुई थी। मालदेव ने एक शासक के रूप में राजनैतिक परिस्थितियों का पूरा लाभ उठाकर मारवाड़ को उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचा दिया था।

मुगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर की १५३० में मृत्यु हो चुकी थी। उसका उत्तराधिकारी हुमायूं विलासी एवं अकर्मण्य स्वभाव का व्यक्ति था। अतएव उसकी कठिनाइयां दिन प्रतिदिन बढ़ती गई। १५४० में बिलग्राम के युद्ध में शेरशाह सूरी ने उसे दूसरी बार पराजित किया था। उसके बाद दिल्ली का राज्य हुमायूं के हाथ से निकल गया। १५३० से १५४० के बीच के समय में भी हुमायूं गुजरात के सुलतान बहादुरशाह और शेरखाँ के विरुद्ध संघर्ष में व्यस्त रहा। अतएव राजस्थान की ओर अथवा मारवाड़ की ओर ध्यान देने का अवसर हुमायूं को नहीं मिला।

मालदेव ने परिस्थितियों का लाभ उठाकर विस्तारवादी कार्यक्रम अपनाया। उसने सबसे पहले भद्राजून[15] के सिन्धलों को पराजित किया। इसके बाद जालौर के बिहारी पठानों के विरुद्ध युद्ध किया।[16] जालौर के पड़ौस में सिवाना और साचोर के स्वतन्त्र राज्य थे। उन पर भी मालदेव ने अपना अधिकार स्थापित कर लिया।[17] इस प्रकार दक्षिणी–पूर्वी सीमा पर सुदृढ़ अधिकार स्थापित करने के बाद मालदेव ने फलोदी के भाटी राजपूतों को पराजित किया। प्रारम्भिक विजयों से प्रोत्साहित होकर उसने मेड़ता और बीकानेर की दिशा में राज्य विस्तार करने की योजना

बनाई। मेडता पर बीरमदेव का शासन था। इस पर अधिकार कर लेने के बाद अजमेर पर भी मालदेव का अधिकार स्थापित हो गया।[१८] १५४२ई० मे बीकानेर के शासक जैत्रसिंह को पराजित करके मालदेव ने मारवाड की सीमाए बीकानेर तक बढा ली थी। तदुपरान्त उसने नागौर के मुस्लिम शासक को पराजित किया। साम्भर, फतेहपुर, उदयपुर (शेखावाटी), चाकसू, टोडा, मालपुरा, टोंक पर उसने अपना अधिकार स्थापित कर लिया था।[१९] विलाडा, जैतारण, डीडवाना और पचपद्रा पर भी मालदेव ने अपना अधिकार स्थापित किया। इस प्रकार मारवाड राज्य की सीमाए आगरा और दिल्ली की सीमाओ के निकट पडौस म पहुँच गई थी। आमेर राज्य का अधिकाश भाग उसके अधिकार मे आ चुका था। 'राजरूपक' का रचयिता मालदेव की आश्चर्यजनक विजय को व्यक्त करते हुए लिखता है —

माल गगगादी राव मारू।
सवला किया आपर सारू॥

१५४२ तक मालदेव की शक्ति चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। इस समय निर्वासित मुगल सम्राट् हुमायू सिन्ध के प्रदेश में भाग्य की तलाश में भटक रहा था। अतएव मालदेव ने उसे सहायता देने के लिए सम्वाद भिजवाया।[२०] मालदेव ने ७०,००० घुडसवारो की सैनिक शक्ति की सहायता का आश्वासन हुमायू के पास भिजवाया था। यह सूचना फारसी की तवारीखो से प्राप्त होती है। मारवाड की ख्यातें इस सम्बन्ध मे मौन हैं। हुमायू और मालदेव के बीच १५४१ से पहले किसी प्रकार के सम्बन्ध नही रहे थे। अतएव यह समझना कठिन प्रतीत होता है कि मालदेव ने अपनी तरफ से सैनिक सहायता का निमत्रण हुमायू को भिजवाया होगा। यह सम्भव है कि सिंध म भटकते समय हुमायू का ध्यान मालदेव की तरफ गया हो और उसने मालदेव से सैनिक सहायता चाही हो। हुमायू के भूतपूर्व पुस्तकालयाध्यक्ष मुल्ला सुर्ख की मालदेव की सेवा मे उपस्थिति का वर्णन हमे गुलबदन बेगम और जौहर की तवारीखो म मिलता है। अतएव यह सम्भव हो सकता है कि हुमायू ने निर्वासन काल मे मुल्ला सुर्ख को मारवाड भेजा हो अथवा मुल्ला सुर्ख स्वय भाग्य की तलाश म मालदेव की सेवा म पहुँच गया हो। इसके बाद हुमायू न मालदेव से सैनिक सहायता की माग की होगी। कुछ भी हो, जनवरी १५४१ मे मालदेव का पत्र भक्खर के पडाव पर हुमायू के पास पहुँचा था। इस पत्र मे सैनिक सहायता का आश्वासन निपिबद्ध था।

प्रश्न यह पैदा होता है कि मालदेव ने हुमायू को सैनिक सहायता देने का आश्वासन क्यों दिया था? आधुनिक इतिहासकारो की विचारधारा के अनुसार मालदेव की आकाक्षा इसकी पृष्ठभूमि म मूल कारण थी। मालदेव मारवाड राज्य को उतना ही प्रभुत्वशाली बनाना चाहता था, जितना राणा सागा के काल में

मेवाड़ का राज्य था। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि मालदेव शेरशाह से असन्तुष्ट हो। उसके प्रतिद्वन्द्वी मेड़ता का वीरमदेव और बीकानेर का कल्याणमल शेरशाह की सेवा मे मालदेव के विरुद्ध सहायता लेने पहुँच चुके थे। अतएव वह शेरशाह को ईंट का जवाब पत्थर से देना चाहता होगा। तीसरा कारण यह भी हो सकता है कि मालदेव शेरशाह को अपहरणकर्त्ता मानता हो। हुमायूं का निर्वासन क्षणिक घटना मानकर मालदेव निर्वासित मुगल सम्राट् को अपनी सैनिक शक्ति के बल पर सत्तारूढ करना चाहता हो। राजनीति के इस शतरंजी खेल मे मालदेव शेरशाह को पैदल मात देना चाहता होगा। इसलिए उसने जनवरी १५४१ में सैनिक सहायता का निमन्त्रण हुमायूं के पास भिजवाया था। उस समय शेरशाह अपनी राजधानी दिल्ली से बहुत दूर बंगाल मे व्यस्त था।[२१] उसकी सेना का अधिकांश भाग गक्खरो के विद्रोह को दबाने मे संलग्न था। ग्वालियर के विरुद्ध शेरशाह की सेना का सेनापति शुजात खाँ युद्ध कर रहा था। मालवा के सरदार सूरि सुलतान के विरोधी थे। अतएव परिस्थितियो को अनुकूल जानकर मालदेव ने राजनैतिक दाँवपेच का खेल खेला होगा। दुर्भाग्यवश हुमायूं अपने विलासी स्वभाव के कारण अवसर का लाभ नही उठा सका। वह १४ माह तक हमीदा बानू बेगम के प्रेमालाप मे सिन्ध मे ही ठहरा रहा। इस बीच शेरशाह दिल्ली लौट आया था। अतएव परिस्थितियाँ पूर्णत परिवर्तित हो गई।

जब हुमायूं को सिन्ध मे किसी प्रकार की सहायता प्राप्त नही हुई तो उसने निराश होकर कहा—"अब मैं राजा मालदेव के पास जाऊंगा।"[२२] ७ मई, १५४२ के दिन भक्कर मे स्थित आरू गाँव से उच्च के रास्ते से रवाना होकर वह जुलाई १५४२ के अन्त तक कुल-ए-जोगी पहुँच गया।[२३] मालदेव को बिल्कुल आशा नही रही थी कि उस समय हुमायूं उसकी सहायता प्राप्त करने के लिए मारवाड़ आ सकता था। इसी समय मालदेव को मालूम पड़ा कि हुमायूं की अत्यन्त शोचनीय स्थिति हो चुकी थी। मालदेव इस स्थिति मे नही था कि हुमायूं की सहायता करके (वह) शेरशाह से बैर मोल लेता। अतएव उसने हुमायूं के प्रति शुष्क व्यवहार अपनाया। हुमायूं ने एक के बाद एक तीन दूत मालदेव के पास भेजे। जब हुमायूं का दूत पहुँचा उसी समय शेरशाह का पत्र भी मालदेव के पास पहुँचा था।[२४] जिसमें शेरशाह ने हुमायूं को बन्दी बनाने की इच्छा व्यक्त की थी। इससे मालदेव को और भी अधिक विश्वास हो गया कि हुमायूं की स्थिति शोचनीय थी। लेकिन एक राठौड़ राजपूत होने के नाते मालदेव ने हुमायूं के साथ विश्वासघात नहीं किया। वह चाहता तो उसे बन्दी बनाकर शेरशाह के हवाले कर देता लेकिन उसने ऐसा करने के स्थान पर बीकानेर की भूमि निर्वाह हेतु हुमायूं को प्रदान की।[२५] मालदेव के इस शुष्क व्यवहार को हुमायूं भी पहचान गया और वह जैसलमेर के रास्ते से सिंध में स्थित उमरकोट की दिशा मे रवाना हो गया।

फारसी के इतिहासकारो ने मालदेव पर निर्वासित मुगल सम्राट के साथ विश्वासघात करने का आरोप लगाया है। आधुनिक इतिहासकारो ने फारसी के ग्रंथो के आधार पर मालदेव को विश्वासघाती बताया है। ऐसा प्रतीत होता है कि कुल-ए-जोगी के पड़ाव पर किसी ने यह भ्रम उत्पन्न करा दिया होगा कि मालदेव शूर सुलतान से मिलकर हुमायू को बन्दी बना लेगा। वीरविनोद में लिखा है[२६] कि हुमायूं के सहायकों ने गाय काट कर अपनी क्षुधा शान्त की थी। इससे राजपूत उत्तेजित हुए। लेकिन मालदेव ने उस पर भी हुमायू के साथ अशिष्ट व्यवहार नहीं किया था। कुल-ए-जोगी से लौटते समय जैसलमेर के मालदेव भाटी के लोगो ने हुमायूं के साथ अभद्र व्यवहार किया होगा। मालदेव भाटी को मारवाड का शासक समझने वाले जौहर के भ्रामक अनुवादक स्टीवर्ट ने यह एक ऐसी ऐतिहासिक उलझन पैदा करदी कि जिसका समाधान तज-किरात-उल-वाकियात की फारसी प्रतिलिपि पढ़ने पर ही हो सकता है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय मे जौहर के ग्रन्थ की एक प्रतिलिपि उपलब्ध है। उसको पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि मारवाड़ से लौटते हुए हुमायू के साथ जैसलमेर के शासक मालदेव भाटी के आदमियो ने अभद्र व्यवहार किया था।[२७] यह अवश्य सत्य है कि १५४३ में मालदेव निर्वासित मुगल सम्राट् को सहायता देने की स्थिति में नही था। तबकात-ए-अकबरी को भी पढ़ने से जाहिर होता है कि इस समय शेरशाह की सेना की एक टुकड़ी नागौर तक पहुँच चुकी थी।[२८] यदि मालदेव का इरादा खराब होता तो वह हुमायू को निर्वाह के लिए बीकानेर देने के स्थान पर उसे बन्दी बनाकर शेरशाह के हवाले भी कर सकता था। अतएव मेरी दृष्टि मे मालदेव को विश्वासघाती कहना ठीक नहीं है।

हुमायू मारवाड से लौट गया लेकिन उसके उपरान्त भी शेरशाह मारवाड की ओर से भयभीत बना रहा। अतएव जैसे ही उसने पूरणमल तोमर पर विजय प्राप्त कर ली वैसे ही आगरा मे अरकान-ए-दौलत की सभा में भाषण देते हुए उसने स्पष्ट कर दिया था कि मालदेव के विरुद्ध कूच करना राजनैतिक दृष्टि से अनिवार्य था।[२६] एक तो वह अजमेर, नागौर और मारवाड का स्वामी था। दूसरे उसने अजमेर और नागौर के अधिपति को मौत के घाट उतार कर उस प्रदेश का अपहरण किया था। तीसरे विजित प्रदेश की व्यवस्था की दृष्टि से भी यह आवश्यक था कि विधर्मियों का नाश करके मुस्लिम राज्य की स्थिति को सुदृढ बनाया जाए। इस प्रकार से राव मालदेव से प्रतिशोध लेने के लिए शेरशाह ने उसके विरुद्ध आक्रमण करने का निश्चय किया था।

मुगलकालीन भारत के आधुनिक इतिहासकारो ने शेरशाह के मारवाड़ अभियान के जो कारण दिए उन्हे इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है:—

१— शेरशाह मालदेव से सम्पूर्ण समर्पण और स्वामिभक्ति की आशा करता था। लेकिन मालदेव ने हुमायू को निमंत्रण भिजवा कर और हुमायू के मारवाड पहुँचने के बाद उसे शेरशाह की इच्छानुसार बन्दी न बनाकर सूर सुलतान की उपेक्षा की थी। अतएव शेरशाह की दृष्टि मे मालदेव एक दोषी था।

२— शेरशाह मालदेव को अपना शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वी मानता था। मारवाड राज्य की उत्तरी-पूर्वी सीमा दिल्ली से केवल ५० मील के फासले पर रह गई थी। अतएव दिल्ली सल्तनत की सुरक्षा और अस्तित्व की दृष्टि मे मालदेव के विरुद्ध कूच करना अनिवार्य था।

३— मेडता और बीकानेर के निर्वासित शासक वीरमदेव और कल्याणमल दोनो ही शेरशाह की सवा मे पहुँच चुके थे और वे अपना प्रतिशोध लेने के लिए शेरशाह को उत्तेजित करते रहते थे।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मारवाड पर आक्रमण करना शेरशाह के लिए राजनैतिक आवश्यकता थी। वह धर्मयुद्ध नहीं था। जैसाकि समकालीन मुस्लिम इतिहासकारो की तवारीखो को पढने से प्रकट होता है।

शेरशाह ने मालदेव पर अचानक धावा बोलने का निर्णय किया था। इसका कारण यह था कि मालदेव १६वी शताब्दी के हिन्दू शासको मे सर्वशक्तिमान राजा माना जाता था। शेरशाह चाहता तो आगरा से अजमेर पहुँच कर मालदेव से लोहा ले सकता था। लेकिन शेरशाह ने ऐसा करना युक्तिसगत नही समझा। जोधपुर ख्यात को पढने से पता चलता है कि आधुनिक डीडवाना के आस-पास मालदेव के सेनापति कू पा के साथ शेरशाह का सशस्त्र सग्राम हुआ था। जिसकी सूचना कू पा ने मालदेव के पास भेजी थी। इसीलिये शेरशाह सीधा अजमेर नहीं गया। परबतसर और पाटन होता हुआ उसने श्रीनगर (अजमेर) के मार्ग से जैतारण की तरफ बढने का निश्चय किया था। अजमेर स २८ मील दक्षिण पश्चिम मे स्थित बावरा नामक स्थान पर पहुँच कर शेरशाह ठहर गया। उसका उद्देश्य मालदेव का जोधपुर के साथ सम्बन्ध विच्छेद करने का था। लेकिन बावरा के बाद रेतीला भू भाग प्रारम्भ हो जाता है इसलिये शेरशाह ने उस योजना को बदल दिया। मालदेव भी अजमेर से पीछे हटकर बावरा से १२ मील के फासले पर गिर्री नामक स्थान पर पहुँचकर ठहर गया। बावरा और गिर्री के बीचोबीच समेल का बरसाती नाला बहता था। मेरे इस निष्कर्ष की पुष्टि इससे भी हो जाती है कि शेरशाह ने एक महीने तक मालदेव पर प्रहार नही किया। इस बीच उसने चालाकी से काम लिया। मालदेव के सेनापतियो की ओर से फर्जी पत्र लिखवाये गए।[३०] उन पत्रो को सम्भवत वीरमदेव के सहयोग से मालदेव के खेमे मे डलवाया गया था।

इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि ४ जनवरी, १५४४ के दिन सूर्योदय से पहले मालदेव जोधपुर की दिशा में भागा। मालदेव को अपने सैनिकों पर सन्देह हो गया था। इसलिये वह युद्ध का मैदान छोड़कर भाग खड़ा हुआ था। मालदेव की अवशिष्ट सेना के १२ हजार घुड़सवार अपनी स्वामिभक्ति का परिचय देने के लिये डटे रहे। ५ जनवरी, १५४४ के दिन शेरशाह और मालदेव की सेना के बीच घमासान युद्ध हुआ। इस युद्ध से थोड़े समय पहले ही जलाल खाँ जलवानी [31] कुमुक लेकर शेरशाह की सहायतार्थ पहुँच गया था। राजपूत वीरतापूर्वक लड़ते रहे। तीसरे पहर के लगभग जब शेरशाह को विजय की सूचना मिली तो उसने हर्ष और विषाद के भाव व्यक्त करते हुए कहा—"एक मुट्ठी बाजरे के खातिर मैंने हिन्दुस्तान की बादशाहत नष्ट करदी होती।[32]"

विजयी शेरशाह ने मालदेव का पीछा करने के लिए सेना की एक टुकड़ी जोधपुर की दिशा में रवाना की और दूसरी टुकड़ी अग्रिम दस्ते के रूप में अजमेर भेजी। वह स्वयं अजमेर होता हुआ मेड़ता पहुँचा। वीरमदेव और कल्याणमल को क्रमशः मेड़ता और बीकानेर के राज्य लौटाकर वह नागौर पहुँचा और वहाँ से जोधपुर गया। इस बीच मालदेव जोधपुर छोड़ चुका था। वह सिवाना के पास स्थित पिपलोद के पहाड़ी क्षेत्र में पहुँच चुका था। अतएव मालदेव की अनुपस्थिति में जोधपुर पर अधिकार करना सुगम होगया।

शेरशाह ने भागेसर में एक थाना स्थापित किया। इस थाने की सुरक्षा के लिये ५ हजार घुड़सवार नियुक्त किये गए। मारवाड़ का प्रबन्ध खवास खाँ और ईसा खाँ नियाजी को सौंपकर शेरशाह स्वयं चित्तौड़ की दिशा में रवाना हो गया। जहाजपुर के पड़ाव पर उसे चित्तौड़ के किले की चाबियाँ भी मिल गई थी। अतएव विजयी शेरशाह राजस्थान से प्रस्थान कर गया। १५४५ में उसकी मृत्यु हो गई।

डा० रघुवीर सिंह सीतामऊ ने पूर्व आधुनिक राजस्थान में लिखा है कि शेरशाह और उसके उत्तराधिकारी इस्लामशाह का शासन राजस्थान में केवल ५२४ दिन रहा था। जोधपुर राज्य की ख्यात, नैणसी ख्यात और बांकीदास ख्यात को पढ़ने से भी पता चलता है कि शेरशाह की मृत्यु के कुछ समय बाद ही मालदेव ने जोधपुर पर अधिकार कर लिया था। इसकी पुष्टि मालदेव के शिलालेख में भी होती है।[33] उसने भागेसर के मुस्लिम थानेदार को खदेड़ दिया था। इसके बाद मालदेव चुप नहीं बैठा। वह आकांक्षावादी था अतएव उसने पूर्व प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करने के लिये आक्रामक अभियान प्रारम्भ कर दिये। सूर सुल्तान के निर्बल उत्तराधिकारी उसकी आक्रामक गतिविधियों को अवरुद्ध करने की स्थिति में नहीं थे। १५५० में मालदेव ने कान्हा को पराजित करके पोकरण पर अपना अधिकार

जमाया। इसके बाद फलोदी और जैसलमेर पर अपना प्रभुत्व जमाया। जालौर के बिहारी पठान मालिक खां को भी उसका प्रभुत्व स्वीकार करना पड़ा।[३४] इस बीच वीरमदेव की १५५३ ईसवी में मृत्यु हो चुकी थी। अतएव मेड़ता को उसने पुनः अपने अधिकार में कर लिया।

१५५५ ईसवी में हुमायूं ने सूर सुलतान का अन्त करके भारत भूमि में दुबारा मुगल साम्राज्य स्थापित किया था, इस समय तक मालदेव बूढ़ा हो चुका था। उसकी विस्तारवादी योजनाओं ने उसे इतना अधिक अप्रिय बना दिया था कि मालदेव को राजस्थान में सैनिक सहायता देने वाला कोई राजपूत राजा नहीं बचा था। परन्तु मालदेव का स्वभाव उस समय भी उग्र बना हुआ था। शेरशाह के भूतपूर्व सैनिक पदाधिकारी हाजीखां पठान ने मेवाड़ के राणा उदयसिंह और मारवाड़ के मालदेव के बीच हरमाड़ा का युद्ध करवा दिया था। २४ जनवरी, १५५७ के दिन हरमाड़ा की युद्धभूमि में मालदेव ने मेवाड़ और मेड़ता की सेनाओं को पराजित किया। २७ जनवरी के दिन मालदेव का मेड़ता पर पुनः अधिकार हो गया। इस समय तक हुमायू का पुत्र और उत्तराधिकारी अकबर सत्तारूढ़ हो चुका था। मिर्जा कासिम खां अजमेर में मुगल सूबेदार के रूप में कार्य कर रहा था। इसने जैतारण पर आक्रमण करने के लिए सेना भेजी। जैतारण के शासक रतनसी उदावत ने मालदेव से सहायता मांगी लेकिन मालदेव ने कोई सहायता नहीं दी। इस नीति ने मालदेव के राज्य के इर्द-गिर्द मुगलों के प्रभाव क्षेत्र को सुदृढ़ बना दिया। १५६२ ईसवी में जब अकबर अजमेर की धार्मिक यात्रा करने आया था तो उस समय मेड़ता का जयमल अकबर की सेवा में उपस्थित हुआ था। जयमल की प्रार्थना पर अजमेर के तत्कालीन मुगल सूबेदार मिर्जा शरफुद्दीन ने एक मुगल सेना मेड़ता के विरुद्ध भी भेजी। इसका परिणाम यह हुआ कि मेड़ता मालदेव के हाथ से निकल गया। मेड़ता के दुर्ग के लिए भीषण युद्ध लड़ा गया था। इस युद्ध की भयकरता का वर्णन अबुल फजल ने अकबर नामा में सजीव ढग से किया है।[३५] यह मालदेव का सौभाग्य था कि वह ७ नवम्बर, १५६२ के दिन इस असार संसार से विदा होगया अन्यथा उसे अपने जीवन काल में ही अकबर के साथ संघर्ष करना पड़ता।

मालदेव के ३१ वर्षीय शासन काल के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मध्यकालीन राजस्थान के राजपूत राजा विस्तारवादी योजनाओं में जुटे रहते थे। वे अपनी प्रतिष्ठा और गौरव के लिए आपस में भी झगड़ते रहते थे। इस पारस्परिक झगड़े के कारण वे इतने अधिक निर्बल हो गये थे कि चाहते हुए भी मुसलमानों के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा बनाने की स्थिति में नहीं रहे थे। दूसरा तथ्य यह भी स्पष्ट हो जाता है कि मालदेव की उग्र आकांक्षावादिता ने उसके स्वजाति

बन्धुओं और मारवाड के राजघराने का अशुभचिन्तक बना दिया था। मेडता और बीकानेर के शासको ने दिल्ली के मुस्लिम शासको से उसके विरुद्ध सहायता चाहकर राजस्थान के द्वार मुस्लिम शासको के लिए खोल दिये थे। तीसरा तथ्य यह भी स्पष्ट होता है कि मालदेव अदूरदर्शी एव जल्दबाज स्वभाव का व्यक्ति था। सुमेल के युद्ध मे पहले उसने अपने सरदारो पर अविश्वास करके अपनी स्थिति को स्वय निर्बल बना लिया था। अन्तिम तथ्य मे यह स्पष्ट होता है कि मालदेव ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा का प्रयोग अपने जीवन काल के अधिकाँश समय मे आक्रामक एव रक्षात्मक युद्ध लडने मे ही किया। अतएव वह अपनी विस्तृत सैनिक विजयों को सगठित नही कर सका। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि मारवाड का शक्तिशाली राज्य मालदेव की मृत्यु के तीन वर्ष के भीतर ही मुगल बादशाहो के अधिकार मे चला गया।

२ राव चन्द्रसेन (१५६२ से १५८१) और मुगल सम्राट अकबर

मारवाड के राठौड राज्य मे उत्तराधिकार का कोई सुनिश्चित नियम नही था। अतएव मालदेव ने भी अपने जीवन-काल मे अपने कनिष्ठ पुत्र चन्द्रसेन को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर दिया था। लेकिन १६वी शताब्दी मे मारवाड के राठौड सरदार शक्तिशाली बने हुए थे और इसलिये उन लोगो ने चन्द्रसेन पर दबाव डाला होगा अन्यथा उसका राज्याभिषेक मालदेव की मृत्यु के बाद नवम्बर १५६२ मे ही हो जाना चाहिये था, जबकि ख्यातो के अनुसार उसका राज्याभिषेक सम्भवत: ३१ दिसम्बर १५६२ के दिन सम्पन्न हुआ था। सरदारो के दबाव का एक दूसरा प्रमाण और उपलब्ध है। चन्द्रसेन के दो बडे भाई राम और उदयसिंह ने क्रमश: सोजत और गाँगानी मे विद्रोह का झण्डा उठाया था। राम के साथ एक छोटा भाई रायमल भी मिल गया था। उदयसिंह के साथ चन्द्रसेन का लोहावट मे सघर्ष हुआ था[३६]। राम ने निराश होकर नागौर के हाकिम हुसैनकुली बेग के पास शरण ली थी। ख्यातो के अनुसार राम की सहायता के लिये हुसैनकुली बेग ने जोधपुर को विजय करने का असफल प्रयास भी किया था[३७]। तात्पर्य यह है कि उत्तराधिकार के सुनिश्चित नियम के अभाव मे चन्द्रसेन के भाईयो ने विधर्मी मुगलो के पास शरण लेकर राठौड राज्य को उस समय निर्बल बना दिया था जब अकबर महत्ता के प्रभाव से मुक्त होकर साम्राज्य की स्थिति को सुदृढ बनाने का प्रयत्न कर रहा था।

मालदेव के सदर्भ मे लिखा जा चुका है कि अकबर ने मेडता को विजय कर लिया था। उसके बाद मुगल सेनाएँ मारवाड की दिशा मे बढी। अकबर अपने जलूसी वर्ष के पन्द्रहवे साल मे अर्थात् १५७० ईसवी मे नागौर आया था। उस समय बीकानेर और जैसलमेर के शासक अकबर की सेवा मे उपस्थित हुए थे। चन्द्रसेन

का प्रतिद्वन्द्वी उदयसिंह भी अकबर के दरबार में मौजूद था। अतएव चन्द्रसेन भी अकबर से भेंट करने के लिये नागौर उपस्थित हुआ।[३८] लेकिन वह नागौर अधिक समय तक नहीं ठहरा और अपने पुत्र रायसिंह को मुगल दरबार में छोड़कर स्वयं लौट गया था। चन्द्रसेन के इस व्यवहार पर टिप्पणी करना आवश्यक है। अकबर का दरबारी इतिहासकार अबुल फजल लिखता है कि जब मारवाड़ का राव चन्द्रसेन अकबर के दरबार में उपस्थित हुआ था तो उसका राज्योचित सत्कार किया गया था।[३९] मारवाड़ की ख्यातों का यह वर्णन ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य नहीं माना जा सकता कि चन्द्रसेन के साथ अभद्र व्यवहार किया गया था और इसलिये वह नागौर छोड़कर चला गया था। मेरी दृष्टि में इसका एक कारण यह हो सकता है कि उदयसिंह का पक्ष बलवान देखकर चन्द्रसेन ने अपने आपको विषम परिस्थिति में पाया होगा और इसलिये वह नागौर से रवाना हो गया। मेरे इस निर्णय की पुष्टि अकबर के द्वारा समावली अभियान के लिये उदयसिंह की नियुक्ति से भी होती है। यदि उदयसिंह का पलड़ा भारी नहीं होता तो समावली के गूजरों का दमन कार्य चन्द्रसेन को भी सौंपा जा सकता था।

चन्द्रसेन के लौट जाने के बाद अकबर ने बीकानेर के रायसिंह को मारवाड़ के प्रबन्ध की देखरेख का कार्य सौंपा।[४०] इस समय अकबर को गुजरात और मेवाड़ की दिशा से खतरा था। सम्भवतः चन्द्रसेन पर उसका पूर्ण विश्वास नहीं था, इसीलिये उसने रायसिंह को मारवाड़ का प्रशासक नियुक्त किया था। उसी समय चन्द्रसेन का पीछा करने के लिये खान कला को भद्राजून की दिशा में भेजा गया था। चन्द्रसेन भद्राजून छोड़ कर सिवाना चला गया था। इस बीच मुगल सेना ने जोधपुर के किले पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। जोधपुर को सूबा अजमेर के अधीन एक सरकार का रूप प्रदान कर दिया गया था। निर्वासित चन्द्रसेन का पीछा करने के लिये मुगल सेनापति शाहबाज खाँ नियुक्त कर दिया गया था। इस प्रकार से चन्द्रसेन दर-दर की ठोकरें खाता रहा। जीवन निर्वाह के लिये उसे आसरलाई और सिवाय के क्षेत्रों को भी लूटना पड़ा था। मुगल सेना ने सिवाना, और सोजत के बीच के प्रदेशों को बुरी तरह से रौंद डाला था। अकबर को जोधपुर का नया प्रशासक महाराजा रायसिंह बीकानेर उत्तेजित करता रहता था।[४१] अतएव इन परिस्थितियों में चन्द्रसेन को मारवाड़ छोड़कर रिपलोद के पहाड़ों में और फिर वहां से सिरोही तथा डूंगरपुर की राह लेनी पड़ी थी। मुगल सेना ने डूंगरपुर तक उसका पीछा किया। जब चन्द्रसेन बांसवाड़ा पहुँचा तो वहां भी उसे किसी प्रकार की सहायता प्राप्त नहीं हुई। निराश परिस्थितियों में वह अजमेर की दिशा में

रवाना हो गया। सिरराई के पहाड़ों मे कष्टमय जीवन व्यतीत करते हुए ११ जनवरी, १५८१ के दिन चन्द्रसेन ने पार्थिव शरीर त्याग दिया। चन्द्रसेन के सम्बन्ध मे मारवाड की ख्यातों मे अधिक वर्णन नही मिलता है। इसलिये मैं उसे विस्मृत नायक मानता हूँ। कारण स्पष्ट है कि चन्द्रसेन की मृत्यु के बाद मारवाड का राज्य, अकबर ने उसके प्रतिद्वन्द्वी उदयसिंह को दे दिया था। स्वाभाविक रूप से चारण और भाटो ने चन्द्रसेन की स्तुति मे गीत नही गाये। ऐसा करने से उदयसिंह और उसके उत्तराधिकारी असन्तुष्ट हो सकते थे। लेकिन इसका यह तात्पर्य नही है कि चन्द्रसेन की उपलब्धियो का सही दृष्टि से मूल्यांकन नहीं किया जाय। अकबर का विरोध करने वाला वह पहला राजपूत राजा था। मेवाड के इतिहासकार राणा प्रताप के गीत अवश्य गाते हैं, लेकिन वे इस बात को भूल जाते हैं कि चन्द्रसेन ने आत्म-सम्मान के समर्पण का पहली बार विरोध किया था। यदि वह चाहता तो १५७० में अकबर के साथ मैत्री सम्बन्ध भी स्थापित कर सकता था। जब इतिहासकार चन्द्रसेन और प्रताप की तुलना करने पर उतारू हो जाते हैं तो वे प्रताप को ऊंचा चढ़ाने के लिये ऐतिहासिक तथ्यों को भी ओझल कर देते हैं और चन्द्रसेन की नागौर यात्रा का उदाहरण देकर यह सिद्ध करने की कोशिश करते है कि उसने अकबर के साथ मित्रता करने को इच्छा प्रकट की थी। लेकिन अकबरनामा के वर्णन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि प्रताप ने भी अपने पुत्र अमरा (अमरसिंह) को राजा भगवन्तदास के साथ अकबर के दरबार मे भेजा था।[४२] प्रताप को चन्द्रसेन के समान भाईयो की कलह का इतना अधिक सामना नही करना पडा था,—जितना चन्द्रसेन को करना पडा। चन्द्रसेन की सिरोही और बागड यात्रा से यह भी स्पष्ट होता है कि वह अकबर के विरोध मे राजपूत राजाओ का संगठन बनाना चाहता था। यदि इसमे उसे सफलता मिल जाती तो अकबर के लिये मारवाड को अधिकार मे करना उतना अधिक सरल नही हो सकता था। कहने का तात्पर्य यह है कि सहयोग और संगठन के अभाव मे चन्द्रसेन ने अकेले ही मुगल विस्तार का विरोध किया। विरोध असफल अवश्य रहा लेकिन इससे मेवाड के राजपूतों को भावी संघर्ष के लिये प्रेरणा अवश्य मिली होगी।

चन्द्रसेन और अकबर के विरोध के संदर्भ मे मुगल सम्राट् की बहुचर्चित राजपूत नीति पर भी प्रकाश डालना अनिवार्य हो जाता है। अकबर राजपूत राजाओं से सम्पूर्ण समर्पण चाहता था। वह उन्हे प्रशासकीय सेवा मे मनसबदार के पद का लालच देकर उनकी सेवाओं को प्राप्त करने के लिये लालायित रहता था। राजनैतिक सम्बन्धो को प्रगाढ बनाने के लिये उसने आमेर, बीकानेर और जैसलमेर की

राजकुमारियो के साथ विवाह भी किये थे। लोहे को लोहे से काटना अकबर को बहुत अच्छी तरह से आता था। चन्द्रसेन के विरुद्ध उसके ही सहोदर रायसिंह बीकानेर की नियुक्ति इस कथन की पुष्टि करती है। उदयसिंह को कृपा पात्र बनाकर अकबर ने चन्द्रसेन को पगु बना दिया था। इस दृष्टि से जब चन्द्रसेन और अकबर के बीच राजनैतिक सम्बन्धो का अध्ययन किया जाता है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि चन्द्रसेन अकबर की नीति से सहमत नही था। जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि मारवाड की भूमि में मुगलो का प्रवेश हो गया। राठौडो का प्रेरणा स्रोत जोधपुर का किला मुगलो के आधिपत्य मे चला गया, इससे मारवाड को आर्थिक हानि अवश्य हुई लेकिन अकबर की दृष्टि से सुगठित साम्राज्य निर्माण की दिशा मे यह अनिवार्य प्रयास था।

---

१. सूजा के ज्येष्ठ पुत्र बाघा का गांगा द्वितीय पुत्र था। (देखिए जोधपुर ख्यात जि. १ पृ. ६३, और विनोद पृ. ८०७-८)

२ मारवाड राज्य में उत्तराधिकार का कोई सुनिश्चित नियम १५१५ तक नही बन सका था। लेकिन पुरातन राजपूती परम्परा के अनुसार ज्येष्ठ पुत्र ही सिंहासनारूढ होता था। गांगा अपने पिता का ज्येष्ठ पुत्र नही था। लेकिन फिर भी वह राजगद्दी प्राप्त करने में सफल हुआ। सफलता का कारण बताते हुए जोधपुर राज्य की ख्यात का लेखक लिखता है कि गागा को बहुसंख्यक राठौड सरदारो का सहयोग और समर्थन प्राप्त था। लेकिन फिर भी उसे सोजत अपने बड़े भाई बीरम को देना पड़ा। (देखिए–नैणसी ख्यात जि. २ पृ. १४४ और कविराजा ख्यात जि. २ पृ. ४७) इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मारवाड के सरदार इतने अधिक शक्तिशाली थे कि राजवंशीय विवादो का निर्णय उनकी इच्छानुसार होता था।

३. मेडता के सम्बन्ध मे जयमल वंश प्रकाश पृ. ७५ और चतुरकुल चरित्र पृ. २५ पठनीय हैं। नागौर के संदर्भ में कयाम खाँ रासा पृ. ४१-४३, नैणसी जि. २ पृ, ४१-४३, नैणसी जि २ पृ १५०-५१ और बाकीदास ख्यात पृ. ११ पठनीय है। जालौर के संदर्भ मे तारीख ए-पालनपुर जि. १ पृ. ५६ पठनीय हैं।

४. राव गागा की बहिन धनबाई का विवाह सांगा के साथ हुआ था। नैणसी की ख्यात, जोधपुर से प्रकाशित जि १ पृ १९

५ मिरात ए-सिकन्दरी पृ. ६७ और मिरात-ए-अहमदी पृ. ६३

६ मेवाड का संक्षिप्त इतिहास (पाण्डुलिपि) पृ. १२६ (ब), मेवाड एण्ड मुगल एम्परस लेखक डॉ गोपीनाथ शर्मा पृ. २६

बाबर अपनी आत्मकथा में लिखता है कि कनकू नामक राजपूत सरदार खानुवा के युद्धक्षेत्र में मारा गया था (देखिए बाबर की आत्मकथा का अंग्रेजी अनुवाद जि. २ पृ ५७३) कनकू से गगू अथवा गांगा समझना भ्रान्तिमूलक है। राव गागा खानुवा के युद्ध में स्वय नही गया था। अतएव उसके मारे जाने का प्रश्न ही नही होता। कनकू कोई अन्य सरदार होगा जो युद्ध भूमि में खेत रहा होगा। राव गांगा तो २१ मई, १५३१ ईसवी तक जीवित रहा था जबकि खानुवा का युद्ध १६ मार्च, १५२७ के दिन लड़ा गया था।

७ देखिए टॉड क्रन-एनल्स आफ मेवाड़ पृ. ४१।

८. डॉ. गोपीनाथ शर्मा के अनुसार यह युद्ध १७ मार्च, १५२७ के दिन लड़ा गया। बाबर की आत्मकथा की अनुवादिका श्रीमती बेवरिज ने शनिवार पर अधिक ध्यान नहीं दिया जो बाबर ने अपनी आत्मकथा के तुर्की संस्करण में लिखा है सम्भवतः डॉ. शर्मा ने मेवाड़ एण्ड मुगल एम्परर्स लिखते समय बाबर नामा के अंग्रेजी अनुवाद पर ही विश्वास किया था। लेकिन वस्तुतः यह युद्ध शनिवार १६ मार्च, १५२७ के दिन लड़ा गया था। अतएव मैं यह निष्कर्ष निकालता हूँ कि खानुवा के युद्ध की सही तिथि १६ मार्च, १५२७ होनी चाहिए।

९. "मेवाड़ के संक्षिप्त इतिहास" नामक पाण्डुलिपि में राणा सांगा की सेनाओं का विस्तृत वर्णन लिपिबद्ध है। यह पाण्डुलिपि १९वीं शताब्दी में पं. अक्षयनाथ ने लिखी थी। पं. अक्षयनाथ मेवाड़ के राजघराने के पुरोहितों के वंशज थे। इनका पूर्वज वागेश्वर खानुवा के युद्ध में मौजूद था। उन्हीं के संस्मरणों के आधार पर पं. अक्षयनाथ ने खानुवा के युद्ध का वर्णन किया है। यह दुर्भाग्य की बात है कि गत ४५ वर्षों में इस पाण्डुलिपि की प्रामाणिकता एवं ऐतिहासिकता को अनुसंधानकर्ताओं ने चुनौती दी है। डॉ. गोपीनाथ जी ने इस पाण्डुलिपि का प्रयोग १९५१-५२ में किया था और मैंने स्वयं इस पाण्डुलिपि को पीछोला झील के तट पर स्थित उदयपुर के राज प्रसाद के एक कक्ष में १९५६ में पढ़ा है। इस ग्रन्थ की भाषा खड़ी बोली अवश्य है लेकिन यह एक ऐसी डायरी है जो पं. अक्षयनाथ के पूर्वजों के संस्मरणों के आधार पर लिखी गई थी।

१०. नैणसी ख्यात जि. २ पृ. १४५-४८ कविराजा ख्यात जि. २ पृ. ४९, बांकीदास ख्यात पृ. ६, ओझा जि. १ पृ. २७४-७७

११. नैणसी ख्यात जि. २ पृ. १५१-५२, जोधपुर ख्यात-जि. १ पृ. ६३-६४, बांकीदास ख्यात पृ. ११, वीर विनोद पृ. ८०८, ओझा पेज २७७-२७९

१२. मुण्डियार ठिकाने की ख्यात और स्वर्गीय मु० देवी प्रसाद द्वारा सम्पादित राठौड़ वंशावली।

१३. स्वर्गीय पं. विश्वेश्वर नाथ रेऊ और स्वर्गीय पं. रामकरण आसोपा।

१४. अकबर नामा जि. २ पृ. २४८, बदायूनी जि. १ पृ. ३६२ तबकात ए अकबरी जि. १ पृ. ८३ और फरिश्ता जि. २ पृ. १२१

१५. १५३९ में मालदेव ने भद्राजुन जीता था। इसके बाद रायपुर पर अधिकार किया। इन दोनों पर सिंधल राजपूतों का शासन था।

भद्राजुन जोधपुर के दक्षिण में ५० मील के फासले पर स्थित है। मालदेव की विजय का उल्लेख ख्यातों के अतिरिक्त बस्ता सं. १०३ में सुरक्षित एक हस्तलिखित पाण्डुलिपि में भी लिपिबद्ध है जो पहले जोधपुर को दस्तरी दफ्तर में रखा हुआ था। अब बीकानेर में पुरातेखा विभाग में होना चाहिये।

१६ नैणसी जि० २ पृ. १६०, तारीख ए-पालनपुर जि. १ पृ. ७४-७५

१७. जोधपुर ख्यात जि. १ पृ. ६८, बांकीदास ख्यात पृ. १२, वीर विनोद पृ. ८०९ सिवाना के किले के पार्श्व द्वार पर विक्रम सं० १५६४ का एक शिलालेख मिला है जिसके आधार पर यह निर्धारित किया जा सकता है कि मालदेव ने आषाढ़ बदी ८ वि. सं. १५६४ के दिन सिवाना का किला जीता था। टॉड ने भ्रम में १५४० में सिवाना विजय का उल्लेख कर दिया है।

जालौर के मलिक खाँ ने ससोदा के युद्ध में सांचोर के बालेचा चौहानों को पराजित करके १५३५ में वहां अपना अधिकार जमाया था। जब मालदेव ने जालौर ले लिया तो

मल्लिक खाँ साचोर मे जाकर रहने लगा। इसलिये मालदेव ने साचोर पर आक्रमण किया होगा। देखिये तारीख-ए-पालनपुर जि. १ पृ. ७२-७५

१८. मालदेव की मेड़ता विजय का उल्लेख ख्यातो के अतिरिक्त जयमल वंश प्रकाश और चतुरकुल चरित्र म भी है। क्योकि अजमेर पर बीरम का अधिकार था, अतएव मेड़ता पर अधिकार कर लेने के बाद अजमेर पर भी मालदेव का अधिकार स्थापित हो गया (देखिये हरविलास शारदा कृत-अजमेर हिस्टोरीकल एण्ड डिस्क्रिप्टिव पृ १५६)

१६. बीकानेर पर मालदेव का अधिकार १५४२ में स्थापित हो चुका था। नागौर विजय का उल्लेख पुरागार मे सुरक्षित बस्ता स० १०३ मे रखी हुई एक पाण्डुलिपि मे है। अन्य विजयो का उल्लेख कविराजा ख्यात और बांकीदास ख्यात म भी है। इसी के आधार पर स्वर्गीय रेऊजी ने ग्लोरीज ऑफ मारवाड म मालदेव की विस्तृत विजयों का वर्णन किया है। राज रूपक के छन्द ४० म भी इसकी पुष्टि होती है।

२० तारीख-ए-सिंध, तरखन नामा, तबकात-ए-अकबरी और फरिश्ता के अनुसार जनवरी १५४१ ईसवी में मालदेव न हुमायूं के पास सहायता का सवाद भिजवाया था। जोधपुर की ख्यातों म इस तथ्य का वर्णन नहीं है। लेकिन टॉड और रेऊ ने अपने ग्रन्थो मे लिखा है कि जब हुमायू ने मालदेव से सहायता चाही थी तो मालदेव न सहायता का प्रस्ताव भिजवाया था। आधुनिक इतिहासकारो के इस कथन की पुष्टि समकालीन स्रोतो से नहीं होती।

२१. फरिश्ता (ब्रिग्स का अग्रेजी अनुवाद) जि. २ पृ. ११९, मखजान-ए-अफगाना का डार्न द्वारा किया हुआ अग्रेजी अनुवाद जि. १ पृ. १३१-३२

२२. गुलबदन बेगम के हुमायू नामा का अग्रेजी अनुवाद का पृ. १५३

२३. जौहर कृत तजकिरात उलवाकेयात पृ. ३७, अकबर नामा (अग्रेजी अनुवाद) जि. १ पृ ३७२ और तबकात-ए-अकबरी का अग्रेजी अनुवाद जि. २ पृ. ८४

अबुलफजल और निजामुद्दीन लिखते हैं कि बीकानेर से १२ कोस के फासले पर हुमायू ३१ जुलाई, १५४२ के दिन पहुँच चुका था। जोहर और गुलबदन बेगम के अनुसार वहा से वह फलौदी और पोकरण के मार्ग से आगे बढ़ा तथा कुल-ए-जोगी नामक स्थान पर पहुँच कर ठहर गया जो स्वर्गीय मुशी देवी प्रसाद और आधुनिक इतिहासकारो के अनुसार मालदेव की राजधानी से बहुत दूर नहीं था। अबुल फजल के अनुसार कुल-ए-जोगी फलौदी के पास होना चाहिये जिसका फासला अजमेर से ६० मील से अधिक है। लेकिन यह स्थान मालदेव की राजधानी से अधिक दूर नहा हा सकता।

२४. गुलबदन बगम ने हुमायू नामा क पृष्ठ १५४ पर मुल्ला सुर्ख के पत्र को उद्धृत करते हुए यह लिखा है कि मुल्ला सुर्ख ने शेरशाह के मालदेव को लिख गए पत्र की सूचना हुमायू के पास भिजवाई थी। इसकी पुष्टि तबकात-ए-अकबरी जि. २ पृ. ८५ से भी होती है।

२५. गुलबदन बेगम कृत हुमायू नामा पृ. १५४ और जौहर की तजकिरात-उल-वाकयात का अग्रेजी अनुवाद पृ ८३

२६ वीर विनोद पृ ८०६

२७ तजकिरात-उल-वाकयात की इलाहाबाद प्रतिलिपि पृ. ५५

२८. नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से मुद्रित तबकात-ए-अकबरी की फारसी प्रतिलिपि पृ. २०६

२६. अब्बास सरवानी तारीख-ए शेरशाही पृ. १३७-३८, तारीख-ए-दाऊदी पृ १५०, बदाऊनी जि. १ पृ. ४५६, तबकात-ए-अकबरी जि २ पृ. १७१ पाद टिप्पणी सख्या एक।

३०. अब्बास सरवानी पृ. १३६, तारीख–ए–दाऊदी पृ. १२७, तबकात-ए-अकबरी जि. २ पृ. १७१ बदाऊनी जि. १ पृ. ४३८, फरिश्ता जि. २ पृ. १२६ नैणसी जि. २ पृ. १५८, वीर विनोद पृ ८१० और टॉड जि २ पृ. ६५७

३१. फरिश्ता जि. २ पृ. १२२, जोधपुर ख्यात जि. १ पृ. ७१

३२. अब्बास सरवानी (इलियट और डाउसन) की पुस्तक के जि. ४ पृ. ४०६

३३. पुरातत्त्व संग्रहालय, आहड (उदयपुर) में मालदेव का एक शिलालेख है जो जोधपुर दुर्ग के फतहपोल के समीप स्थित जलाशय (राणीसर) से प्राप्त हुआ था। इसमें मालदेव को महाराजाधिराज महाराज कहकर सम्बोधित किया गया है। शिलालेख में राणीसर निर्माण का उल्लेख है।

३४. पोकरण, फलोदी, जैसलमेर और जालोर विजय का वर्णन जोधपुर ख्यात जि १ पृ. ७४ और ७५ पर उपलब्ध है।

३५. अकबरनामा जि. २ पृ. २४८–४९

३६. जोधपुर ख्यात जि १ पृ. ८६, कविराजा ख्यात जि. २ पृ. ६७, बांकीदास ख्यात पृ. २० इस युद्ध का विस्तृत विवरण एक समकालीन पत्र में है जो कि बीकानेर के पुरालेखागार में सुरक्षित है।

लोहावट ७२ अक्षांश ५ देशान्तर उत्तर और २७ अक्षांश पूर्व में फलोदी से १६ मील दक्षिण पश्चिम में स्थित है।

३७ जोधपुर की ख्यातों में इस आक्रमण का वर्णन है। देखिये जोधपुर ख्यात जि १ पृ. ८६, कविराजा ख्यात जि २ पृ. ६८, बांकीदास ख्यात पृ. २१ लेकिन अकबर नामा, आइने अकबरी इत्यादि में इस आक्रमण का कोई वर्णन नहीं है, यदि ख्यातो के वर्णन को सही मान लिया जाय तो १५६४ से पहले हुसेनकुली बेग ने जोधपुर पर आक्रमण किया होगा। लेकिन जब इसका वर्णन फारसी की तवारीखों में नही है तो फिर ख्यातो के वर्णन के आधार पर इस असफल आक्रमण को सही नही माना जा सकता।

३८. मारवाड की ख्यातों के अनुसार राव चन्द्रसेन का पुत्र रायसिंह १५७० से ही अकबर की सेवामें था। अपने पिता की मृत्यु की खबर पाकर वह आगरा से मारवाड आया। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि वह २ वर्ष से अधिक शासन नही कर सका। १५८३ ईसवी में अकबर ने मारवाड राज्य का टीका उदयसिंह को प्रदान कर दिया था। जोधपुर सरकार में स्थित सोजत का परगना उदयसिंह को प्रदान कर दिया था। जोधपुर सरकार मे स्थित सोजत का परगना उदयसिंह को दिया गया था। यह क्यों किया गया ? अकबर के इस कार्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह वंशानुगत उत्तराधिकार को मान्यता देता था। उदयसिंह को उसके पिता ने जानबूझ कर राजगद्दी से वंचित कर दिया था। उदयसिंह १५६३ से ही अकबर की सेवामें था। १० वर्ष के लम्बे समय में वह अपनी स्वामिभक्ति का भी परिचय दे चुका था। अतएव अकबर ने रायसिंह के स्थान पर उदयसिंह को मारवाड का राजा बनाना अधिक उचित समझा। देखिये जोधपुर ख्यात जि. १ पृ. ७२–७३, बांकीदास ख्यात पृ. २२ और वीर विनोद पृ ८१४

३९. देखिये अकबरनामा, अंग्रेजी अनुवाद जि. ३, पृ. २६५

४०. दलपत विलास के अनुसार जोधपुर का प्रबन्ध बीकानेर के राव कल्याणमल को सौंपा गया था। राव कल्याणमल की तरफ से उसका पुत्र रायसिंह जोधपुर की देखभाल करता था। लेकिन फारसी की तवारीखों को पढ़ने से पता लगता है कि अकबर ने रायसिंह को जोधपुर का प्रशासक नियुक्त किया था। (अकबर नामा जि. ३ पृ. ८, तबकात-ए-अकबरी जि. २ पृ. ३३२, बदाऊनी जि. २ पृ. १४४ और फरिश्ता जि २ पृ. २३५ सब अंग्रेजी अनुवाद) मैं दलपत विलास के वर्णन को अधिक सही मानता हूँ कल्याण मल के जीवित रहते हुए उनकी उपेक्षा करते हुए उसके पुत्र रायसिंह का जोधपुर का प्रशासक नियुक्त नहीं किया जा सकता था। यह सम्भव है कि कल्याणमल ने वृद्धावस्था के कारण जोधपुर की देखभाल का कार्य उसके ज्येष्ठ पुत्र को सौंप दिया हो। इसकी पुष्टि 'कर्मचन्द्र वंशावली प्रबन्ध' से भी होती है।

४१. देखिये मारवाड़ एण्ड मुगल एम्परर्स पृ. ५०-५१

४२. देखिये अकबर नामा अंग्रेजी अनुवाद जिल्द ३, पृ. ४४
प्रस्तुत लेखक की पुस्तक 'राजस्थान का इतिहास' पृ. २४१

३

सहयोग का युग

१ मोटा राजा उदयसिंह (१५८३-१५९५) और अकबर

चन्द्रसेन की मृत्यु के बाद अकबर ने मारवाड़ का टीका उसके पुत्र रायसिंह को न देकर उदयसिंह को प्रदान किया था। उसे जोधपुर सरकार का केवल एक परगना सोजत वतन जागीर[1] के रूप में प्रदान किया गया था। अतएव उदयसिंह के राज्याभिषेक के साथ साथ मध्यकालीन मारवाड़ के इतिहास का एक नया अध्याय प्रारम्भ होता है। उदयसिंह मारवाड़ का सर्व प्रभु व सम्पन्न शासक नही था। वह केवल मुगल साम्राज्य का एक सेवक था जिसे कि वतन जागीर के रूप में सोजत का परगना प्रदान किया गया था। अतएव उदयसिंह को अपने पूर्वजो का राज्य प्राप्त करने के लिये एक ओर मुगलो के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने पड़े तो दूसरी ओर वह जीवन पर्यन्त मुगल सेना में बना रहा। यहा यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि चन्द्रसेन की मृत्यु का समाचार पाकर यदि उसका पुत्र रायसिंह मुगल दरबार से लौटकर जोधपुर नही आता तो सम्भवत अकबर उदयसिंह को जोधपुर का राज्य १५८३ में भी प्रदान नही करता। रायसिंह के मारवाड़ लौटने पर राठौड़ो के विरोध का प्रबल हो जाने का पूरा-पूरा खतरा था। १५८१ का वर्ष मुगल साम्राज्य के लिये घोर सकट का वर्ष था। यद्यपि अकबर कठिनाइयो पर विजय प्राप्त करने में सफल हो चुका था। लेकिन बीकानेर के रायसिंह के विरुद्ध बढ़ते हुए असन्तोष के प्रति वह सजग था और इसलिए उसने उदयसिंह को मारवाड़ का टीका प्रदान किया होगा। मारवाड़ के सरदारो ने उदयसिंह का विरोध किया। यह विरोध सामयिक था। उसके बाद मुगल बादशाह की कृपा से वह जोधपुर के किले में सत्तारूढ हो गया। इसका तात्पर्य यह है कि जब रायसिंह के समर्थको का प्रारम्भिक विरोध शान्त हो गया तो अकबर ने जोधपुर उदयसिंह को प्रदान कर दिया। उसके बाद ही उदयसिंह ने अपनी पुत्री मानीबाई[2] का विवाह सस्कार अकबर के पुत्र जहागीर के साथ १५८६ में सम्पन्न किया था। यह केवल एक राजवशीय विवाह था। मानीबाई के गर्भ से ही जहागीर का तीसरा पुत्र खुर्रम उत्पन्न हुआ था जिसने मुगल सम्राट शाहजहा के रूप में १६२७ तक शासन किया था। यह विवाह सम्मान-पूर्ण ढग से सम्पन्न किया गया था। इस विवाह के बाद मुगल प्रशासनिक सेवा में

उदयसिंह के प्रभाव की उत्तरोत्तर वृद्धि हुई। उसे लाहौर का मुगल सूबेदार नियुक्त किया गया था और मृत्यु के समय वह १५०० सवारों का मनसबदार भी था। यदि उदयसिंह आमेर के राज घराने की तरह वैवाहिक सम्बन्ध करके राजनैतिक मित्रता को प्रगाढ नहीं बनाता तो मारवाड की भूमि कोपभाजन बनी रहती। आपत्कालीन परिस्थितियों में मारवाड का विकास सम्भव नहीं हो सकता था। अतएव मानीबाई, जिसे मुगल हरम में जोधाबाई की उपाधि से विभूषित किया गया था, के वैवाहिक सम्बन्ध के लिये उदयसिंह की भर्त्सना करना उचित नहीं है। वह परिस्थितियों के आधीन था। १५७० तक वैवाहिक सम्बन्ध राजनैतिक सन्धियों की आधारशिला बन चुके थे। अतएव उदयसिंह का व्यवहार राजनैतिक दृष्टि से उचित ही था। इसमें सन्देह नहीं कि जोधाबाई ने मुगल हरम में रहते हुए राजनैतिक गतिविधियों को प्रभावित नहीं किया था। लेकिन आगरा और फतहपुर सीकरी के राज प्रासादों में जोधाबाई के नाम से सम्बोधित किये जाने वाले महलों में जो पूजा स्थल (मन्तरालय) अब भी दिखाई देते हैं, वे इस बात के प्रतीक हैं कि अकबर और जहांगीर की धार्मिक नीतियों को राजपूत स्त्रियों ने सहिष्णु अवश्य बनाया होगा। अतएव १५८५ का विवाह केवल मारवाड के इतिहास में ही नहीं वरन् मध्यकालीन भारत के इतिहास में भी एक महत्त्वपूर्ण घटना थी।

२ सूरसिंह (१५९५–१६१९) और मुगल बादशाह अकबर तथा जहांगीर

मोटा राजा उदयसिंह की मृत्यु के पश्चात् मुगल सम्राट् अकबर ने जोधपुर का टीका स्वर्गवासी राजा के छठे पुत्र को उसकी इच्छा के अनुसार लाहौर में प्रदान किया था। मोटा राजा की हवेली पर शोक प्रकट करने के लिये अकबर स्वयं भी गया था। राज्य का टीका देते समय सूरसिंह को मारवाड के नौ परगने गुजरात के चार परगने, मालवा का एक परगना और एक दक्षिण तथा एक मेवाड का परगना कुल मिलाकर १६ परगने प्रदान किये थे।[3] उसे २००० जात और सवार का मनसब भी प्रदान किया गया था। इससे यह प्रकट होता है कि सूरसिंह के राज्यारोहण के साथ साथ मुगलों का प्रभुत्व मारवाड पर बढ़ गया था। सूरसिंह ने भी अपनी ओर से मुगल साम्राज्य की सेवा करने में कोई कसर उठा नहीं रखी थी। शाहजादा मुराद की अनुपस्थिति में सूरसिंह को सूबा गुजरात की देखभाल का काम सौंपा गया था। जब गुजरात में १५९७ में एक विद्रोह फूट पडा था तो उस समय पान का बीडा स्वीकार करने में साम्राज्य के सभी सरदार हिचकिचा रहे थे। लेकिन सूरसिंह ने तत्परता के साथ बाडो स्वीकार करके अकबर के विश्वास को बढ़ावा दिया।[4] वह मुजफ्फर गुजराती के बागी पुत्र बहादुर के विरुद्ध सेना लेकर गया। इसमें अकबर को प्रसन्नता हुई और गुजरात में शान्ति स्थापित होने

के बाद अकबर ने सूरसिंह को शाहजादा दानियाल के साथ दक्षिण भारत मे (१५९९ मे) नियुक्त किया। वहां रहते हुए उसने साद‌ात खाँ के विद्रोह का दमन किया। दक्षिण मे जब राजू ने अहमद नगर मे विद्रोह किया तो सूरसिंह ने उसका दमन भी योग्यता पूर्वक किया। इसका परिणाम यह हुआ कि १६०२ ईसवी में खुदावद खाँ के विद्रोह के दमन का कार्य भी सूरसिंह को ही सौंपा गया था। मल्लिक अम्बर चम्पू के विद्रोह का दमन करने में सूरसिंह ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति एव योग्यता का परिचय दिया था।[५] मारवाड की वशावली मे इस घटना का वर्णन अतिशयोक्ति पूर्ण शब्दो मे इस प्रकार किया गया है ?

"तिण पाट सूर तप तेज तिण, उडे असल लग अरतियो।
भाड्यो भरज तितार भिडे, लडे देश दक्खण लियो॥[६]

१६०३-४ मे सूरसिंह अवकाश ग्रहण करके जोधपुर लौट आया था। उसने दक्षिण की सेवाओ की एवज मे परगना जैतारण और मेडता के परगने का आधा पश्चिमी भाग मुगल सम्राट् अकबर से प्राप्त कर लिया था। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सूरसिंह ने एक रण कुशल विजेता के रूप मे प्रसिद्धि प्राप्त करली थी और इसलिये अकबर उसकी हर माग को स्वीकार करता था।[७]

अकबर की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी जहागीर ने सवाई राजा सूरसिंह को फरवरी १६०७ मे गुजरात के विद्रोह का दमन करने के लिये नियुक्त किया। सूरसिंह ने अपनी अनुपस्थिति मे गजसिंह को जहागीर के दरबार मे भेजा। नवम्बर १६०८ मे जहागीर ने खानखाना के साथ सूरसिंह की नियुक्ति पुनः दक्षिण मे की। उस समय उसका मनसब बढा दिया गया था। वह दक्षिण के लिये रवाना होते समय तीन हजार जात और २००० सवार का मनसबदार था। १६०९ मे जब महाबत खाँ को मेवाड के राणा अमरसिंह के विरुद्ध भेजा गया था, तो उस समय महाबत खाँ ने जहागीर के कान भरने के लिये यह शिकायत की थी कि राणा का परिवार राजा सूरसिंह के अप्रत्यक्ष सरक्षण मे सोजत के दुर्ग में रहता है। अतएव महाबत खाँ ने सोजत का प्रदेश राव चन्द्रसेन के पौत्र करम सेन को प्रदान कर दिया। सूरसिंह को इस पुन प्राप्त करने के लिये अपने मत्री भाटी गोविन्द दास को मुगल सम्राट् के पास भेजना पडा। फिर कहीं जाकर महाबत खाँ के उत्तराधिकारी अब्दुला खा ने सोजत और नाडौल सूरसिंह के पुत्र कुवर गजसिंह को सौंपाये थे।[८]

मेरी गणना मे सूरसिंह की मुगल सम्राट जहागीर के साथ पहली भेट अजमेर मे सितम्बर १६१३ मे हुई थी। उस समय फलौदी का परगना उसे जागीर मे दिया गया था। और शाहजादा खुर्रम के साथ उसे राणा अमरसिंह के विरुद्ध नियुक्त किया गया था। खुर्रम ने मेवाड के पहाडी इलाके मे जो कतिपय थाने स्थापित किये थे,

वे सूरसिंह से के सुझाव पर ही किये थे। इसी समय सादडी के थाने पर कुंवर गजसिंह को नियुक्त किया गया था। जब राणा अमरसिंह का पुत्र कुंवर कर्ण गोगुन्दा के स्थान पर खुर्रम से मिलने के लिये उपस्थित हुआ था तो उस समय सूरसिंह खुर्रम के दरबार में मौजूद था।[९]

जहांगीर के शासन काल के दसवें जलूसी वर्ष में सूरसिंह को ५००० जात और ३००० सवार का मनसब दिया गया था।[१०] उस समय तक किसी भी हिन्दू को इससे ऊंचा मनसब नही दिया गया था। मनसब के साथ-साथ दक्षिण जाते समय सूरसिंह को काश्मीरी शाल और मोतियो की माला भी प्रदान की गई थी। इस समय सूरसिंह ने भी मुगल सम्राट् को प्रसन्न करने के लिये कुछ भेंट पेश की थी। जहांगीर की आत्मकथा और मासिर उल उमरा के अनुसार इन भेंटो की एवज मे ही सूरसिंह के मनसब मे उपर्युक्त वृद्धि की गई थी। जहांगीर ने उसे खानजहान लोदी के साथ दक्षिण के विद्रोहो का दमन करने के लिये नियुक्त किया था। सूरसिंह को सन्तुष्ट बनाये रखने के लिये उसके मनसब में ३०० सवार की वृद्धि की गई और जालौर की जागीर उसके पुत्र गजसिंह को प्रदान की गई। उस समय तक जालौर बिहारी पठानो के अधीन था। इस पर गजसिंह ने १६१९ तक अधिकार स्थापित कर लिया था। दक्षिण मे विद्रोहो का दमन करते हुए ७ सितम्बर, १६१९ के दिन महीकर के पडाव पर सूरसिंह का देहान्त हो गया।[११] जोधपुर ख्यात के अनुसार सूरसिंह की मृत्यु के समय उसके अधिकार मे जोधपुर, सिवाना, जैतारण, जालौर सातलमेर, सोजत, मेडता, फलौदी, साचौर, तेरवाडा, मेरवाडा, गोरवाडा के कुछ गांव मालवा मे रतलाम और बडनगर गुजरात मे राधनपुर और दक्षिण में चोर गांव थे।[१२] इसीलिये जहांगीर ने अपनी आत्मकथा म लिखा है कि सूरसिंह की जमीदारी मेवाड के राणा से कम नही थी। उसने मेवाड के राणा को युद्ध मे मात भी दी थी। उसके पिता और पितामह के द्वारा छोडी हुई सत्ता से उसका राज्य बहुत अधिक बढ चुका था।[१३] सूरसिंह ने मुगल साम्राज्य के प्रति सहयोग और सद्भावना की नीति नही अपनाई होती तो मारवाड की भूमि के बाहर अतिरिक्त प्रदेश वतन जागीर के रूप मे प्राप्त नही हो सकते थे। इसमे सन्देह नही कि उसका समय मारवाड की सीमाओं के बाहर दक्षिण एव गुजरात मे ही व्यतीत हुआ था। लेकिन इसमें मारवाड के पैतृक राज्य को भौतिक लाभ हुआ। सूरसिंह के व्यक्तिगत शौर्य में अभिवृद्धि हुई। इसीलिये सूरसिंह की गणना सफल शासको मे की जाती है।

३ गजसिंह (१६१९-१६३८) और मुगल सम्राट् जहांगीर और शाहजहा

सूरसिंह की मृत्यु के समय उसका पुत्र गजसिंह जोधपुर मे था। अतएव मृत्यु का समाचार पाकर जोधपुर का प्रबन्ध राजसिंह कूंपावत को सौंपकर गजसिंह

बुरहानपुर (दक्षिण) के लिय रवाना हो गया। मुगल सम्राट् जहागीर न अब्दुल रहीम खानखाना के पुत्र दराज खाँ के हाथो जोधपुर राज्य के टीके की रस्म गजसिंह के पास भिजवाई थी। उस समय ७ परगने भी जोधपुर, जैतारण, सोजत, सिवाना, सातलमेर, तेरवाडा और गोडवाड जागीर मे गजसिंह को प्रदान किये गए थ। उसे ३००० जात और २००० सवार का मनसब भी प्रदान किया गया था।[१४] इसी समय गजसिंह को राजा की उपाधि भी दी गई थी। जहागीर न सूरसिंह की मृत्यु के बाद फलोदी, जालौर साचोर और मेडता के परगने गजसिंह को प्रदान नही किये थे। फलोदी का परगना तो गजसिंह के छोटे भाई सबलसिंह को दिया गया था और जालोर, साचोर तथा मेडता के परगने खुरम को प्रदान किये गए थे।[१५] यह आश्चय की बात है क्योकि १६१५ से ही गजसिंह मुगल साम्राज्य की सेवा मे था। सेवाओ के उपहार स्वरूप उस समय समय पर उपहार और उपाधियाँ भी प्रदान की गई थी। इसके उपरात भी उसे स्वर्गीय पिता की समस्त वतन जागीर उत्तराधिकार मे नही मिली।

जब गजसिंह महीकर के थाने से लोटने की तैयारी कर रहा था उसी समय मलिक अम्बर के साथियो न महीकर के थाने को लूट लिया था। उस समय गजसिंह के पास केवल २००० सैनिक थ लेकिन फिर भी उसन बहादुरी के साथ मुगल थाने की रक्षा की थी[१६]। जहागीर ने प्रसन्न होकर उस दल थम्भन' की उपाधि प्रदान की थी। इसके बाद अम्बर और मुगलो के बीच समझौता हो गया। अतएव गजसिंह को दक्षिण स आगरे के मार्ग से जोधपुर लोटने की आज्ञा मिल गई। इसी समय उसे जालोर और साचोर क परगने दिये गए थे। उसका मनसब भी बढा दिया गया था। जोधपुर लोटते समय वह ४००० जात और ३००० सवार की मनसब दार था। ११ माच १६२२ क दिन जहागीर ने उस विदा करते समय नक्कारा भी प्रदान किया था।

१६२२ क अतिम दिनो म शाहजादा खुरम ने अपन पिता जहागीर के विरुद्ध विद्रोह किया था। उस समय मुगल सम्राट की आज्ञा से गजसिंह ने चाटसू के पडाव पर १ मई १६२३ क दिन जहागीर से भेट की थी। ८ मई क दिन गजसिंह को खुरम का पीछा करन के लिये शाहजादा परवेज और महावत खा के साथ रवाना किया गया था। उस समय फलोदी की जागीर उस दी गई थी। उसका मनसब बढा कर ५००० जात और ४००० सवार कर दिया गया था। इसी बीच बिलोचपुर के युद्ध म खुरम पराजित हुआ और उसने उदयपुर का रास्ता अपनाया। परवेज को जहागीर ने वापस बुला लिया था। खुरम अधिक दिनो तक मेवाड नही ठहरा। वह राणा कर्ण के भाई भीम सीसोदिया क साथ बिहार की तरफ चला गया। उस समय जहागीर की आज्ञा स गजसिंह और महावत खा खुरम का पीछा करन के

लिये गए थे। आधुनिक पटना के पास गंगा नदी के तट पर स्थित हाजीपुर नामक स्थान पर १६ नवम्बर, १६२४ के दिन मुगल सेना और खुर्रम के बीच संग्राम हुआ था। युद्ध के प्रारम्भ में सिसोदिया ने उसे ललकारा तो गजसिंह ने अपनी बहादुरी का परिचय दिया और परिणाम स्वरूप खुर्रम की सेना के पैर उखड़ गये।[57] हाजीपुर के युद्ध में गजसिंह के शिथिल व्यवहार पर टिप्पणी करना आवश्यक है। खुर्रम जोधाबाई का पुत्र था। इस नाते वह गजसिंह का सम्बन्धी (गजसिंह खुर्रम के मामा का बेटा था) था। सम्भवतः इसीलिये युद्ध के प्रारम्भ में राठौड़ नरेश ने सक्रिय रूप से भाग नहीं लिया था। गजसिंह ने यह बहाना किया था कि शाहजादा परवेज ने उसे मुगल सेना के हरावल में नियुक्त नहीं किया। लेकिन जब भीम सीसोदिया ने उसे ललकारा तो उसकी जाति के सम्मान को ठेस पहुँची और उसने सम्पूर्ण क्षमता के साथ शौर्य का प्रदर्शन किया। जहाँगीर ने प्रसन्न होकर उसका मनसब बढ़ाकर ५००० जात और ५००० सवार कर दिया। उस समय किसी भी हिन्दू सरदार को इतना ऊँचा मनसब प्राप्त नहीं था।

हाजीपुर के युद्ध में पराजित होकर खुर्रम दक्षिण चला गया। उस समय जहाँगीर ने गजसिंह को भी दक्षिण भेजा था। मार्च १६२६ तक गजसिंह को दक्षिण में रहना पड़ा। जब खुर्रम और जहाँगीर के बीच समझौता हो गया तो गजसिंह एवं खानजहाँ लोदी को दक्षिण की देखभाल का काम सौंप दिया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि गजसिंह की खानजहाँ लोदी के साथ नहीं पटी। इसीलिये जहाँगीर की मृत्यु की खबर पाकर गजसिंह अजमेर में भावी मुगल सम्राट खुर्रम या शाहजहाँ से मिलने के लिये उपस्थित हुआ था। १३ फरवरी, १६२८ के दिन गजसिंह ने शाहजहाँ से प्रथम बार भेंट की थी उस समय शाहजहाँ ने उसकी समस्त जागीर बहाल करदी थी और उसे खामा खिलअत एक तलवार, एक घोड़ा एक हाथी और नक्कारा उपहार स्वरूप प्रदान किये थे।[58]

गजसिंह को शाहजहाँ का प्रारम्भ से ही विश्वास प्राप्त था। जब आगरा के आस पास भौमियों ने विद्रोह किया था तो उस समय शाहजहाँ ने गजसिंह की ही नियुक्ति की थी। १६३० में जब दक्षिण के सूबेदार खान जहाँ लोदी ने विद्रोह किया तो उस समय भी उसे दक्षिण में नियुक्त किया गया था। दक्षिण में भेजने से पहले उसे महाराजा की उपाधि तथा मारोठ का परगना उपहार में दिया गया था।[59] इस प्रकार शाहजहाँ के शासनकाल में गजसिंह की प्रतिष्ठा में अभिवृद्धि हुई। दिसम्बर १६३१ में उसकी नियुक्ति पुनः दक्षिण में की गई। इस समय बीजापुर के सुल्तान आदिलशाह ने दक्षिण में विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया था। इस प्रकार बारम्बार उसकी नियुक्तियां दक्षिण में की गई। इसका एक कारण यह था कि वह दक्षिणियों की गुरिल्ला युद्धनीति से परिचित हो

चुका था और इसीलिये उसकी नियुक्ति दक्षिण भारत मे की जाती थी। रविवार ६ मई, १६३८ के दिन अल्प आयु मे ही महाराजा गजसिंह का स्वर्गवास हो गया "गुण रूपकबन्ध" के अनुसार उसकी मृत्यु के समय मारवाड के शासन के अधीन ५४०० गाव थे और उसका आधिपत्य ६ बडे बडे दुर्गों पर स्वीकार किया जाता था।[२८]

१५८३ से ११३८ के बीच मारवाड के तीन शासक-उदयसिंह, सूरसिंह और गजसिंह मुगल सम्राटों के समर्थक बने रहे। इन तीनो न ही सहयोग के काल मे मुगल साम्राज्य की प्रशसनीय सेवा की थी। इस सेवा की एवज मे उन्हें औपचारिक उपहार एव उपाधिया प्राप्त होती रही। परिणामत मारवाड क राठौड राजाओ की प्रतिष्ठा मे उत्तरोत्तर अभिवृद्धि हुई। लेकिन सहयोग के इस काल मे मारवाड का राज्य मुगलों का अधीनस्थ राज्य बन गया था। अकबर को प्रसन्न करने के लिए उदयसिंह ने मुगलिया रहन-सहन और खान-पान ग्रहण कर लिया था। यह परम्परा ज्यो की त्यो बनी रही। उदयसिंह ने मुगल प्रशासनिक सेवा के ढाचे के आधार पर मारवाड की प्रशासनिक व्यवस्था भी की थी। उस व्यवस्था के अन्तर्गत जागीरदारो से पट्टाकस वसूल करने की परम्परा प्रारम्भ हो गई। इससे उदयसिंह का उसके जागीरदारो पर प्रभुत्व तो स्थापित हो गया था परन्तु इसके साथ साथ मुगल प्रभाव मारवाड पर छा गया। उदयसिंह ने ही सबसे पहले काजी फिरोज को जोधपुर का शहर काजी नियुक्त किया था। इसी समय मारवाड मे डाक चौकिया स्थापित की गई थी। उपरोक्त तीनो शासक मारवाड के लिये अनुपस्थित शासक बने रहे। अतएव डाक चौकियो की व्यवस्था करना आवश्यक था।[२९] कहने का तात्पर्य यह है कि सहयोग के काल मे मारवाड का राठौड राज्य मुगलो के प्रभाव मे रग गया था।

४ महाराजा जसवन्तसिंह प्रथम (१६३८ से १६७८) एव शाहजहा व औरगजेब

महाराजा गजसिंह के पुत्र और उत्तराधिकारी जसवन्तसिंह प्रथम के सिंहासनारोहण के पश्चात् मारवाड राज्य के इतिहास मे एक नया अध्याय प्रारम्भ होता है। जसवन्तसिंह मुगल साम्राज्य का स्वामिभक्त एव सर्वोच्च हिन्दू मनसबदार था। परिणामस्वरूप मारवाड राज्य उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गया। उसने मुगल साम्राज्य की सक्रिय रूप मे एक सेना नायक एव प्रशासक के रूप म सेवा की थी। इन सेवाओं के उपहार स्वरूप उसकी वतन जागीर मे उत्तरोत्तर अभिवृद्धि हुई। दूसरी ओर मारवाड राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार हुआ, जिसके फलस्वरूप मारवाड़ की आर्थिक स्थिति सुधर गई। जहा एक ओर जसवन्तसिंह के राज्य काल मे मारवाड की भौतिक उन्नति हुई वहा दूसरी ओर इस राज्य के भावी पतन के बीज भी उसके जीवन काल में बो दिये गए थे। जसवन्तसिंह अपने पिता

का छोटा पुत्र था, इसके बडे भाई अमरसिंह राठौड को नागौर का राज्य प्रदान किया गया था। अमरसिंह के पुत्र इन्द्रसिंह ने नागौर का स्वामी रहते हुए औरंगजेब के शासन काल मे मारवाड के विभाजन के बीज बोये थे। जसवन्तसिंह के व्यवहार से असन्तुष्ट होकर महेशदास राठौड मालवा मे चला गया था, जहा उसके वशजो ने रतलाम, सीतामऊ इत्यादि के स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिये थे।[२२] तीसरी ओर जसवन्तसिंह की नीति और कार्यों से असन्तुष्ट होकर ही औरंगजेब ने मारवाड को १६७८ ईसवी मे खालसा करने का निर्णय लिया था। इस प्रकार जसवन्तसिंह का शासनकाल मारवाड के इतिहास मे विरोधाभास का युग माना जा सकता है।

सिंहासनारोहण के बाद से ही जसवन्तसिंह को दोहरी भूमिका निभानी पडी थी। मारवाड के शासक के रूप मे वह अपने पूर्वजो के समान अनुपस्थित शासक था। मुगल सेना के सेनानायक एव प्रशासक के रूप म उसने जो भूमिका निभाई, उसके फलस्वरूप मुगल साम्राज्य व्यवस्थित एव शक्तिशाली बना। अतएव मुगल मनसबदार के रूप मे जसवन्तसिंह की मारवाड से निरन्तर अनुपस्थिति से लाभ उठा कर शाहजहा ने राठौड राज्य की आन्तरिक व्यवस्था मे अधिक से अधिक हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया था। राजसिंह कूपावत एव महेशदास राठौड की नियुक्ति मारवाड के दीवान के रूप मे शाहजहा के परामर्श से ही की गई थी।[२३] इस दृष्टि से देखा जाए तो जसवन्तसिंह का शासनकाल विरोधाभास का युग प्रतीत होता है। मारवाड की राजनैतिक स्वतन्त्रता कम हो गई थी। जसवन्तसिंह मुगल साम्राज्य का सेवक अधिक था। मारवाड के शासक के रूप मे उसका योगदान बहुत कम प्रतीत होता है।

सिंहासनारोहण के समय शाहजहा ने जसवन्तसिंह को ४००० जात और सवार का मनसब प्रदान किया था। उसी समय उसे ५ परगने वतन जागीर के रूप मे प्रदान किये गए थे।[२४] सिंहासनारोहण के कुछ ही समय बाद अक्टूबर १६३८ मे लाहौर के पडाव पर जसवन्तसिंह को उपहार दिये गए थ। जिससे यह प्रकट होता है कि जसवन्तसिंह अल्प वयस्क होते हुए भी मुगलो की सेवा मे बना रहा होगा। उसने १६४० तक पशावर और अमरूद के पहाडी भू-भाग मे मुगल सेना के सेनापति के रूप में कार्य किया था।[२५] इसके बाद वह एक वर्ष जोधपुर मे रहा। फिर उसे आगरा बुला लिया गया और दारा शिकोह के साथ कन्धार अभियान पर भेज दिया गया। जसवन्तसिंह ने जून १६४३ तक मुगल साम्राज्य की सेवा की। १६४४ के प्रारम्भ म जब शाहजहा अजमेर म अन्नासागर के पडाव पर ठहरा हुआ था तो उस समय जसवन्तसिंह की नियुक्ति आगरा के कार्यवाहक सूबेदार के रूप म की गई थी।[२६] वहीं से उसे लाहौर पहुँचने की आज्ञा दी गई। वह आज्ञा अनुसार लाहौर पहुँच गया। शाहजहा ने प्रसन्न होकर हिण्डौन का परगना उसे प्रदान किया था। इसके

बाद १६४६ मे जसवन्तसिंह को औरंगजेब के साथ कन्धार की रक्षा के लिये नियुक्त किया गया था। वह काबुल के पड़ाव पर मुगल सेना का अध्यक्ष था। शाहजहा ने जसवन्तसिंह की सेवाओ से प्रसन्न होकर उसका मनसब ५००० जात और सवार कर दिया था। यह उस युग का हिन्दुओ के लिये सर्वोच्च मनसब माना जाता था।

तत्कालीन राजस्थान की राजनीति मे जसवन्तसिंह को ख्याति प्राप्त स्थान प्राप्त था। जब जैसलमेर के शासक रावल मनोहरदास की मृत्यु हुई तो उस समय मुगल सम्राट् ने सबलसिंह को जैसलमेर की गद्दी दिलाने का काम जसवन्तसिंह को सौंपा था। जसवन्तसिंह की सैनिक सहायता के बल पर ही सबलसिंह अपने प्रतिद्वन्द्वी रामचन्द्र को पराजित करके जैसलमेर का राज्य प्राप्त करने मे सफल हुआ था। जैसलमेर अभियान ने एक ओर तो जसवन्तसिंह की प्रतिष्ठा म अभिवृद्धि की, दूसरी ओर उसे सातलमेर का परगना मुगल सम्राट की कृपा से प्राप्त हो गया और फलोदी तथा पोकरण के परगने सबलसिंह ने प्रसन्न होकर उसे भेंट कर दिये।[२७]

औरंगजेब कन्धार की रक्षा करने म असफल हो चुका था। अतएव शाहजहा ने १६५२ म शाहशुजा के नेतृत्व म एक सेना कन्धार के लिये रवाना की। इस सेना मे जसवन्तसिंह की भी नियुक्ति की गई थी। कन्धार के अभियान की सफलता म प्रसन्न होकर शाहजहा ने जनवरी १६५४ मे जसवन्तसिंह का मनसब बढाकर ६००० जात और ६००० सवार कर दिया था। इनमे स ५००० सवार दो अस्पा सेह-अस्पा थे।[२८] इसी समय फारसी का तवारीख लेखको के अनुसार 'महाराजा' की उपाधि भी जसवन्तसिंह का प्रदान की गई थी।[२९] इससे यह स्पष्ट होता है कि मुगल साम्राज्य के अन्तर्गत जसवन्तसिंह की स्थिति सुदृढ हो चुकी थी। मार्च १६५७ म विद्रोही सिन्धना को पराजित करके जसवन्तसिंह ने अपनी आन्तरिक स्थिति को सुदृढ बना लिया था। शाहजहा के जीवन काल म ही उसके पुत्रो के बीच मतभेद इतना बढ गया था कि उसके चारो पुत्र एक-दूसरे को फूटी आख भी नहीं देख सकते थे। इस विषम परिस्थिति म जसवन्तसिंह की सहानुभूति और समर्थन शाहजहा के ज्येष्ठ पुत्र दारा शिकोह को प्राप्त था।

६ सितम्बर १६५७ के दिन शाहजहा दिल्ली म रोगग्रस्त हो गया था। उसने जनता को झरोखे म दर्शन देना भी बन्द कर दिया था। उस समय साम्राज्य के दूरस्थ प्रान्तो म यह अफवाह फैल गई थी कि शाहजहा मृत्यु को प्राप्त हो चुका था और दारा शिकोह ने राज्य हडपने के उद्देश्य से उसकी मृत्यु की खबर को छिपा रखा था। इस अफवाह का परिणाम यह हुआ कि पूर्व के प्रदेश म शाहशुजा ने अपने आपको स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया। शाहजहा के तीसरे पुत्र औरंगजेब ने अपने छोटे भाई मुराद के साथ समझौता करके दलबल सहित दिल्ली की दिशा

मे बढना प्रारम्भ कर दिया था। मुगल साम्राज्य के लिये यह घोर संकट का समय था। उस समय जसवन्तसिंह को भी आगरा बुलाया गया था।[30] जब मुगल सरदार विद्रोही राजकुमारों के विरुद्ध सेना की कमान थामने में हिचकिचा रहे थे उस समय जसवन्तसिंह ने एक स्वामिभक्त सरदार के रूप में पान का बीडा ग्रहण करते हुए कहा था —

"मसदरे मुजराय नेको खिदमते शवम"[31]

अर्थात् राजकीय सेवा करने में उस किसी प्रकार की आपत्ति नही थी। जसवन्तसिंह की स्वामिभक्ति से प्रसन्न होकर शाहजहा ने उस उस सेना की कमान सौंपी, जो औरंगजेब और मुराद की दक्षिण से बढती हुई सेनाओ को रोकने के लिये भेजी गई थी। इस समय जसवन्तसिंह के सहायक सेना नायक के रूप में कासिम खां को भी नियुक्त किया गया था। जसवन्तसिंह ने १६५७ से १६७६ के बीच शाहजहा के पुत्रों के मध्य उत्तराधिकार के समय संघर्ष में, स्वामिभक्ति तत्परता एवं योग्यता का पूरा पूरा परिचय दिया था। जब उस आगरा से विदा किया गया तो उस समय उसने छोटा एवं सुरक्षित मार्ग अपनाया था।[32] यह इसलिये किया था कि वह विद्रोही राजकुमारों की सेना को सूबा मालवा में ही रोक देना चाहता था। मुकन्दरा की घाटी से होता हुआ जसवन्तसिंह खाचरोद तक पहुँच गया था। यदि मुराद की सेना औरंगजेब की सेना के साथ उससे पहले नहीं मिल जाती तो जसवन्तसिंह गुजरात की दिशा में बढकर विद्रोहियों के संगठन को रोक देता। खाचरोद से वह उज्जैन की तरफ बढा। चोरनरायण के पडाव पर पहुँच कर वह ठहर गया। इस बीच मुराद और औरंगजेब की सेना भी मुगल पडाव के निकट तक पडौस में पहुच चुकी थी। जसवन्तसिंह ने धर्मत के युद्ध में अपनी सम्पूर्ण दक्षता का परिचय दिया था। लेकिन कासिम खां विद्रोही राजकुमारों से मिल गया था। जिससे मुगल सेना का पक्ष निर्बल हो गया था। उसका दुष्परिणाम यह निकला कि जसवन्तसिंह १६ अप्रैल १६५८ के दिन दोपहर के समय विषम स्थिति में घिर गया था। यदि उस समय राठौड सरदार आसा सीलावत (दुर्गादास का पिता) अन्य सरदारों से मशवरा करके महाराज को युद्ध का मैदान छोडने के लिये विवश नहीं करता तो जसवन्तसिंह धर्मत के युद्ध में ही वीरगति को प्राप्त हो जाता।

फारसी की तवारीखों के लेखकों ने तथा विदेशी बर्नीयर तथा मनूची ने अपने यात्रा संस्मरणों में एक रोमांचकारी कहानी के रूप में जसवन्तसिंह के पलायन का वर्णन किया है[33]। स्वाभाविक रूप से परवर्ती लेखकों ने अपनी कृतियों में जसवन्तसिंह का एक भीरु के रूप मे चित्र खींचा है। खड़िया जग्गा के द्वारा लिखी गई वचनिका को पढने से पता चलता है कि १६ अप्रेल, १६५८ के दिन स्वामिभक्त सरदारों ने महाराजा जसवन्तसिंह को युद्ध का मैदान छोडने के लिए

विवश किया था। खडिया जग्गा के शब्दो को उद्धृत करना उचित प्रतीत होता है[३४] —

ठाकुरां सतरज स्याल मंडियो
राजा राखो
राजा राखियं आखो रहे
आये तो अणी वाटटि हरवल दिया तठं यथेज कीयो होज छै
शाहजहा जीवतोही मुवौ
औरंगसाह पतिसाह हुवौ
सामि सू संग्राम करण
औछी बाढौ
जमराज काढो
वागा झालि जमराज बलिया
भारत रा भरमार रतनागिरी भलिया ॥७४॥

समकालीन कृति के आधार पर यह भी स्पष्ट हो जाता है कि जसवन्तसिंह की पराजय के लिए आन्तरिक एवं ब्राह्यतत्व उत्तरदायी थे। विदेशी यात्री बर्नीयर ने अपने संस्मरणो मे महाराज की पराजय को अतिशयोक्ति पूर्ण शब्दो मे चित्रित किया है बर्नीयर लिखता है कि पराजित जसवन्तसिंह रात्रि के समय जोधपुर पहुँचा था उसकी महारानी ने उसे किले म मुश्किल से घुसने दिया और जब वह किले मे पहुँच गया तो उसके साथ अपमानजनक व्यवहार किया गया।[३५] बर्नीयर के इस कथन को कतिपय विद्वानों ने उद्धृत किया है। लेकिन मैं इसे ऐतिहासिक सत्य नहीं मानता। इसके निम्नलिखित कारण हैं —

१ — बर्नीयर के अनुसार जसवन्तसिंह की रानी उदयपुर की राजकुमारी थी। लेकिन जोधपुर की ख्यातों और वंशावलियो को पढने पर यह पता नही चलता कि जसवन्तसिंह का कोई विवाह उदयपुर के राजघराने मे भी हुआ था।

२— जसवन्तसिंह पराजित होकर जोधपुर नही पहुँचा था। वह तो अपने सरदारो सहित जोधपुर पहुँचा था। वृजलाल चोली पाण्डुलिपि को पढने से पता चलता है कि जसवन्तसिंह को जोधपुर पहुँचने मे लगभग १० दिन का समय लगा था।[३६] अतएव मै यही निष्कर्ष निकालता हूँ कि बर्नीयर ने वर्णन घटना को रोमांचकारी बनाने की दृष्टि से अथवा उदयपुर के राजघराने को ऊंचा बढाने की दृष्टि से यह किया होगा।

धमत के युद्ध म शाही सेना को पराजित करके औरंगजेब और मुराद आगरा के पडौस म चम्बल नदी के तट पर स्थित सामूगढ तक पहुँच गये। उन्होने सामूगढ के युद्ध म दारा को पराजित किया। तत्पश्चात् आगरा पर अपना अधिकार

जमाया। दारा आगरा से दिल्ली और दिल्ली से पंजाब तथा सिन्ध की दिशा में रवाना हो गया। दारा जब भाग्य की तलाश में भटक रहा था, तो उस समय जसवन्तसिंह ने दारा के नाम पत्र लिखे थे।[३७] इन पत्रों से आश्वस्त होकर ही दारा अजमेर आया था। तारागढ के पास दोराय के मैदान में जिसे कि फारसी के इतिहासकारों ने देवराय कहकर सम्बोधित किया है वहां पर दारा और औरंगजेब की आखिरी भिड़न्त हुई।[३८] इस युद्ध में दारा पराजित हुआ।

कुछ इतिहासकार जसवन्तसिंह पर विश्वासघाती होने का आरोप लगाते हैं। लेकिन वे विद्वान इस बात को भूल जाते हैं कि जब जसवन्तसिंह दारा की सहायतार्थ जोधपुर से पीपाड़ तक पहुँच चुका था, उसी समय पीपाड़ और मेड़ता के बीच के रास्ते में जसवन्तसिंह को मिर्जा राजा जयसिंह का पत्र मिला।[३९] मिर्जा राजा ने यह पत्र औरंगजेब के आदेश पर लिखा था। उस समय तक औरंगजेब दिल्ली में विधिवत् राज्याभिषेक समारोह भी सम्पन्न कर चुका था। अतएव दोराय के युद्ध में वास्तविक सम्राट् के विरुद्ध निर्वासित शाहजादे को सैनिक सहायता देना स्वामिभक्ति नहीं थी। अतएव जसवन्तसिंह तटस्थ रहा। इसके लिए उसे आरोपित करना उचित प्रतीत नहीं होता। एक मनसबदार को अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करना प्रशासकीय नियमों के अनुरूप है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि जसवन्तसिंह ने अपने सम्बन्धी शाहजहां के पक्ष का अवसरवादियों की तरह परित्याग कर दिया था। जब औरंगजेब उसे अपने बड़े भाई शाहशुजा के विरुद्ध युद्ध करने के लिए खजवा के मैदान में (आधुनिक उत्तर प्रदेश में इटावा के निकट) ले गया था, उस समय उसने अन्तिम बार प्रयत्न किया कि औरंगजेब से राजसिंहासन छुड़वा दें। समकालीन कृतियों को पढने से पता चलता है कि शुजा के विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ होने से पहले जसवन्तसिंह मुगल खेमे में लूटमार करके आगरा होता हुआ जोधपुर चला गया था।[४०] इस समय उसका लक्ष्य केवल इतना ही था कि औरंगजेब के पक्ष को निर्बल करदे। शाहजहां को कारावास से छुटकारा मिल जाय और वह पुनः शासक बन जाए। लेकिन इस प्रयत्न में भी जसवन्तसिंह को सफलता नहीं मिली। इसका कारण यह था कि मुअज्जम खान, जिसे उसने शुजा और अपने बीच में मध्यस्थ बनाया था, ने रहस्य का भण्डाफोड़ कर दिया जिसके परिणामस्वरूप औरंगजेब सचेत हो गया। यह तो ठीक है कि ७ जनवरी, १६५६ के दिन औरंगजेब शुजा को पराजित करने में सफल हो गया। लेकिन इसके साथ-साथ जसवन्तसिंह एवं औरंगजेब के बीच मन मुटाव और अधिक बढ गया। जब जसवन्तसिंह जोधपुर पहुँचा था, तब दारा अहमदाबाद में था। उसने जसवन्तसिंह से सहायता चाही थी। जब जसवन्तसिंह [illegible] मन में सोचविचार कर रहा था, उसी समय मिर्जा राजा जयसिंह ने औरंगजेब के आदेश पर एक दूसरा पत्र जसवन्तसिंह के

पास भिजवाया था।[४१] यह पत्र बिलाड़ा के पड़ाव पर महाराजा को मिला था। इस पत्र के द्वारा गुजरात की सूबेदारी औरंगजेब ने जसवन्तसिंह को सौंपी थी। इस पर वह १६६२ ईसवी तक बना रहा था। जसवन्तसिंह ने औरंगजेब की इस कृपा को राजनैतिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण समझ कर दारा के दूत का कोई स्वागत नहीं किया। इसका स्पष्ट कारण यह था कि औरंगजेब अपनी शक्ति संगठित कर चुका था। वह वैधानिक और वास्तविक शासक बन चुका था। अतएव टिमटिमाते हुए दीपक दारा का समर्थन करने से मारवाड़ को हानि हो सकती थी।

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि मुगल साम्राज्य के उत्तराधिकार के समय में जसवन्तसिंह ने सक्रिय रूप से भाग लिया था। शाहजहां के पुत्रों के बीच लड़े गये चार मशहूर संग्रामों में तीन में जसवन्तसिंह ने भाग लिया था। उसका व्यक्तित्व और कृतित्व यह बतलाता है कि वह अन्तिम समय तक औरंगजेब को अपहरणकर्ता मानता था उसके लिए शाहजहां के चारों पुत्र बराबर थे। एक स्वामिभक्त सरदार के रूप में वह वैधानिकता को अधिक महत्व देता था। इसीलिए उसने उत्तराधिकार के युद्ध में औरंगजेब का साथ नहीं दिया था।

औरंगजेब ने १६६२ ईसवी में जसवन्तसिंह की नियुक्ति दक्षिण भारत में अपने मामा शाइस्ता खाँ के साथ की थी। शाइस्ता खाँ पूना में पड़ाव डालकर ठहरा हुआ था। १५ अप्रैल १६६३ की रात्रि को शिवाजी ने शाइस्ता खाँ के डेरे पर छापा मारा। इस छापे में मुगल सेना का अत्यधिक नुकसान हुआ। शाइस्ता खाँ की उंगली कट गई और उसका पुत्र अब्दुल फतह खाँ मराठों के द्वारा मारा गया। इस वर्णन पर प्रकाश डालते हुए समकालीन विदेशी यात्री बर्नीयर ने अपने यात्रा संस्मरण में लिखा है कि यह कार्य जसवन्तसिंह की मिली भगत अथवा मध्यस्थता के बिना नहीं हो सकता था।[४२] भीमसेन बुरहानपुरी ने भी लिखा है कि जसवन्तसिंह की मिलीभगत के कारण ही शिवाजी रात्रि-आक्रमण में सफलता प्राप्त कर सका था।[४३] खाफी खाँ ने अपने ग्रंथ में जसवन्तसिंह को ही दोषी ठहराया है।[४४] अतएव औरंगजेब का इतिहास लिखते समय स्वर्गीय सर जदुनाथ सरकार ने बर्नीयर और मनुची के शब्दों की पुनरावृत्ति की है।[४५] मैंने सन् १६६१-६२ में एक अनुसंधान लेख द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया था कि जसवन्तसिंह और शिवाजी के बीच सांठ गांठ होने की कोई सम्भावना नहीं थी।[४६] मैंने दो तर्क प्रमुख रूप से दिये थे—पहला तर्क तो यह था कि यदि औरंगजेब को जसवन्तसिंह पर सन्देह होता तो इस मिलीभगत का वर्णन आलमगीरनामा में अवश्य किया जाता। आलमगीर-नामा के अतिरिक्त फतुहात ए आलमगीरी तथा सुजानराय खत्री की पुस्तक में इस घटना का वर्णन अवश्य होता। दूसरा तर्क यह था कि औरंगजेब महाराजा जसवन्त

सिंह को भी शाइस्ता खाँ के साथ-साथ दक्षिण से बदल देना। इसके विपरीत जसवन्तसिंह को दक्षिण भारत में शाहजादा मुअज्जम के सहयोगी के रूप में रखा गया और उसे औपचारिक इनाम इत्यादि प्रदान किये गए थे। यदि शिवाजी और जसवन्तसिंह मिले हुए होते तो मई १६६६ में आगरा में शिवाजी यह नहीं कहता—"कि मैं जसवन्तसिंह के पीछे खड़ा होऊंगा कि जिसकी पीठ मेरे सैनिक कई बार देख चुके हैं।"[47] अतएव मैंने यह निष्कर्ष दिया कि शाइस्ता खाँ के अपमान में जसवन्त सिंह की अप्रसन्नता अवश्य हो सकती है, लेकिन मिलीभगत नहीं थी। इस तर्क को नकारात्मक समझा जा सकता है। लेकिन यह एक ऐसा सबल तर्क है कि जिसका उत्तर उपलब्ध समकालीन प्रमाणों के आधार पर आज तक किसी विद्वान ने नहीं दिया है। जसवन्तसिंह १६६४ ईसवी तक दक्षिण में बना रहा। यदि उस समय भी उसका बूंदी के राव राजा बुद्धसिंह हाडा के साथ मतभेद नहीं होता तो सम्भवतः औरंगजेब उसे दक्षिण से नहीं हटाता। अतएव मैं तो आज भी यही मानता हूँ कि जसवन्तसिंह ने एक स्वामिभक्त मुगल सरदार के रूप में अपनी भूमिका दक्षिण भारत में निभाई थी।

२१ सितम्बर, १६६७ और ३ अक्टूबर, १६६७ के अखबारों को पढ़ने से पता चलता है कि रोहतक और रिवाड़ी के परगने जसवन्तसिंह को जागीर में दिये गये थे।[48] ३० अगस्त, १६६७ के दिन बादशाह के आदेश से जुमाद-उल-मुल्क ने महाराजा को पत्र लिखकर सूचित किया था कि दूदा कुनी और तानापुर के चार परगने उसे जागीर में प्रदान किये गए थे।[49] इसके दो दिन बाद सांचोर का परगना भी जसवन्तसिंह की जागीर में सम्मिलित कर दिया गया था।[50] इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि औरंगजेब ने उसकी सेवाओं की प्रशंसा की होगी। जिस समय बहादुर खान के स्थान पर जसवन्तसिंह को गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया था, उस समय भी पिराद और राधनपुर के परगने उसे जागीर में प्रदान किये गए थे।[51]

गुजरात में रहते समय अर्थात् मई १६७२ तक जसवन्तसिंह ने तत्परता और स्वामिभक्ति के साथ कार्य किया था। जब पालनपुर के राज्य में विद्रोह हुआ तो उसने वहाँ का प्रशासन कमाल खाँ के हाथ से छीन कर फतेह खाँ को सौंप दिया था।[52] लेकिन इसके उपरान्त भी जसवन्तसिंह का स्थानान्तरण गुजरात से जमरूद कर दिया गया। इस स्थानान्तरण के दो कारण हो सकते हैं। पहला कारण तो यह हो सकता है कि उत्तरी पश्चिमी सीमान्त प्रदेश में सुरक्षा के निमित्त एक अनुभवी सेनानायक की आवश्यकता का अनुभव करके औरंगजेब ने जसवन्तसिंह की वहाँ नियुक्ति की हो। इसीलिए प्रस्थान के समय एक खासा खिलअत और सात हजार रुपये कीमत की एक आरसी उसे प्रदान की गई थी। जब जसवन्तसिंह

रावलपिंडी पहुँचा तो औरंगजेब ने वहाँ से रवाना होते समय एक जडाऊ तलवार और एक हाथी मय साज सामान के जसवन्तसिंह को दिया था।[२३] इससे मैं यह निष्कर्ष निकालता हूँ कि औरंगजेब महाराजा के दीर्घ सैनिक अनुभव का सीमान्त प्रदेश मे प्रयोग करना चाहता था।

दूसरा कारण मीरात-ए-अहमदी के लेखक के अनुसार यह था कि गुजरात मे जसवन्तसिंह पर कर्ज चढ गया था और सम्भवत उसने सरकारी पैसे मे (गबन करके) खर्चा चलाना शुरू कर दिया था। अतएव औरंगजेब ने उसका स्थानान्तरण कर दिया। गुजरात से स्थानान्तरण करने का एक कारण और हो सकता है। शिवाजी मुगल दरबार से लौटकर दक्षिण पहुँच गया था और उसने १६७० ईसवी मे दूसरी बार सूरत को लूटा था और १६७२ तक सूरत को शिवाजी ने आतंकित कर रखा था। सूरत गुजरात का एक प्रमुख व्यापारी नगर था। हो सकता है कि औरंगजेब जसवन्तसिंह की असफलता से असन्तुष्ट हुआ हो और उसने महाराज का स्थानान्तरण कर दिया हो।

जसवन्तसिंह ११ मई, १६७२ के दिन गुजरात से रवाना होकर जमरूद पहुँचे थे। वहा पर रहते हुए २८ नवम्बर, १६७८ की रात्रि को लगभग दो बजे उनकी मृत्यु हो गई।[२४] जमरूद का कार्यकाल मुगल सम्राट् औरंगजेब के साथ विरोध का समय था। विदेशी इतिहासकार रोबंद ओर्मी ने लिखा है कि जब जसवन्तसिंह को जमरूद मे मालूम पडा कि औरंगजेब मन्दिर तुडवा कर मस्जिद बनवा रहा है तो उसने गर्जना की थी कि वह काबुल की मस्जिदो की ईंट से ईंट बजा देगा।[२५] जसवन्तसिंह की मृत्यु के बाद उसके परिवार को जमरूद से जोधपुर लौटने मे जिन घोर कठिनाइयो का सामना करना पडा था, उससे भी यह प्रकट होता है कि जीवन के अन्तिम क्षणो मे जसवन्तसिंह और औरंगजेब के सम्बन्ध बिगड गये थे। तनावपूर्ण सम्बन्धो का एक कारण यह हो सकता है कि मुगल सम्राट ने उसकी नियुक्ति जमरूद के थानेदार के रूप मे की थी। मासिर उल उमराव के लेखक के अनुसार जसवन्तसिंह की गणना १६वी शताब्दी के हिन्दू राजाओ मे प्रथम राजपूत राजा के रूप मे की जाती थी।[२६] ऐसे व्यक्ति को उसके एक मात्र जीवित पुत्र पृथ्वीसिंह की मृत्यु [२७] के बाद जमरूद के थाने पर नियुक्त करना अपमानजनक था।

जिस समय जसवन्तसिंह की मृत्यु हुई, वह मुगल साम्राज्य का हफ्त हजारी मनसबदार था। उसे सात हजार जात का मनसब प्राप्त था, जिसमे पाच हजार दो अस्पा, सेह अस्पा सवार थे।[२८] उसकी वतन जागीर मे २२ परगने ऐसे थे, जो मारवाड के भौगोलिक सीमाओ के बाहर थे।[२९] सम्पत्ति व शक्ति की दृष्टि से उसकी गणना प्रमुख राजपूत राजाओ मे की जाती थी। डा० कानूनगो ने डिग्गी के कागजात मे एक अखबार खोज निकाला है कि जिसमे आगरा के एक वाक्या निगार

ने उसे "हिन्दुवा सूरज" लिखकर सम्बोधित किया था।[३९] अर्थात् मुगल साम्राज्य की सेवा में रहते हुए भी जसवन्तसिंह ने एक परम्परागत राजपूत राजा की भांति हिन्दू धर्म, जाति और संस्कृति की रक्षा की थी। तारीख-ए-मुहम्मदशाही का लेखक लिखता है कि जब जसवन्तसिंह की मृत्यु की सूचना औरंगजेब को मिली तो वह उद्‌गार प्रकट करता हुआ बोल उठा 'दर्वाजह कुफ्र शिकस्त।[४०] मारवाड़ में भी यह कहावत प्रचलित है "जसवन्त जब लग जीवियो पड़ियो मह पायाण।" [४१] इससे यह प्रकट होता है कि जसवन्तसिंह और औरंगजेब के बीच धार्मिक मतभेद थे। 'अजीत चरित्र" का लेखक लिखता है कि जबतक जसवन्तसिंह जीवित रहा। तबतक औरंगजेब न तो राजपूतों को मुगल प्रशासनिक सेवा में भर्ती करने पर प्रतिबन्ध लगा सका और न उनको बलपूर्वक मुसलमान बनाने की कोशिश कर सका।[४२] इसके विपरीत दशहरे के त्यौहार पर औरंगजेब अपने पूर्वजों की तरह राजपूत राजाओं को इनाम-इकराम देता था।[४३] इससे यह स्पष्ट होता है कि जसवन्तसिंह औरंगजेब की कट्टर धार्मिक नीति पर एक प्रकार का अंकुश था। औरंगजेब ने जसवन्तसिंह के लिए १६५६ में ही कहा था कि वह एक काफिर है, जो मस्जिदों को तोड़कर उनके स्थान पर मन्दिर बनवाता है।[४४] औरंगजेब और जसवन्तसिंह के बीच लगभग २० वर्ष तक धार्मिक मतभेद बना रहा। परन्तु इसके होते हुए भी महाराजा जसवन्तसिंह प्रथम ने एक स्वामीभक्त मुगल मनसबदार के रूप में साम्राज्य की अन्तिम सांस तक सेवा की। वह कर्त्तव्यपरायण शासक था, जिसने अपने जीवन में अपने पूर्वजों की तरह दोहरी भूमिका, मारवाड़ के शासक के रूप में और मुगल मनसबदार के रूप में, निभाई थी। उसकी कर्त्तव्यपरायणता के कारण उसे शाहजहां और औरंगजेब के काल में अतिरिक्त वतन जागीर प्राप्त हुई। परिणामस्वरूप मारवाड़ का राठौड़ राज्य उसके शासन काल में उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गया था।[४५]

---

१ "वतन" एक अरबी भाषा का शब्द है इसका तात्पर्य भूमि से होता है। यह भूमि वंशजों के रूप में किसी भी कृषक को प्रदान की जाती थी। विदेशी विद्वान ई एच बेडनपावेल ने वतन की व्याख्या करते हुए लिखा है कि वतन की भूमि मृत्यु उपरान्त उत्तराधिकारियों को विरासत में मिल जाती थी। वे लोग उसका आपस में बांट सकते थे अथवा उसका विक्रय करके नगदी ले सकते थे। द्रष्टव्य—उपरोक्त विद्वान की पुस्तक—दी लैण्ड सिस्टम ऑफ ब्रिटिश इण्डिया पृ १८१

२ जोधाबाई के सम्बन्ध में अंग्रेज इतिहासकारों—एलफिंस्टन और कर्नल टॉड ने भ्रान्ति उत्पन्न करदी है। इन लोगों ने जोधाबाई को अकबर की पत्नी लिखा है। जहांगीर की आत्मकथा, अकबर नामा, जहांगीर तुज़ुक और बादशाह नामा का पढ़ने से पता चलता है कि जोधाबाई का विवाह अकबर के पुत्र सलीम के साथ हुआ था। जोधाबाई का जन्म जोधपुर

ख्यात के अनुसार १५६९ म हुआ था और अकबर ने फतेहपुर सीकरी म जो जनाना महल बनवाया था उसका निर्माण १५७० म अर्थात् उसके विवाह से करीब सत्रह वर्ष पहले हो चुका था। जब १९वी शताब्दी में कनिंघम ने फतेहपुर सीकरी के महलों का नामकरण किया तो वह १५७० मे निर्मित जनाने महल को जोधाबाई महल समझ बैठा, समझने मे कोई भ्रान्ति नहीं थी क्योंकि जहांगीर के शासनकाल म जोधाबाई उसमें रही होगी। मैंने इस भ्रम का निवारण करने के लिये त्रिवेन्द्रम से प्रकाशित होने वाली शोध पत्रिका जनरल आफ इण्डियन हिस्ट्री में एक लेख दिसम्बर १९६४ मे प्रकाशित कराया था।

(जहांगीर की आत्मकथा जि १ पृ ३४ अंग्रेजी अनुवाद और अकबर नामा जि. १ पृ० ३३)

३. जोधपुर ख्यात जि १ पृ १२२, कविराजा ख्यात जि २ पृ ८८ और रामकरण आसोपा कृत मारवाड का मूल इतिहास पृ १२८
४. देखिये सूरज प्रकाश पृ. २७ तथा मारवाड एण्ड मुगल एम्परर्स पृ. ६३
५. डा० राधेश्याम सक्सेना का शोध प्रबन्ध इस तथ्य पर प्रकाश नहीं डालता क्योंकि लेखक ने फारसी साधनों पर ही विश्वास किया है। चूंकि इस घटना का सम्बन्ध सूरसिंह के व्यक्तिगत शौर्य से था अतएव मारवाड के ऐतिहासिक सूत्रों में वर्णन विस्तार से मिलता है।
६. देखिये राठौड वंशावली छ द १०
७. देखिये मारवाड एण्ड मुगल एम्परर्स पृ. ६५
८. देखिये जोधपुर ख्यात जि १ पृ १२६-२७ और वीर विनोद पृ ८१७
९. देखिये मारवाड एण्ड मुगल एम्परर्स पृ ६६
१०. तुजुक ए जहांगीरी जि १ पृ १०१
११. गज गुण रूपक बन्ध पृ. १२८ (पुस्तक प्रकाश पाण्डुलिपि) तथा मारवाड एण्ड मुगल एम्परर्स पृ ६९
१२. जोधपुर ख्यात जि १ पृ १४६
१३. जहांगीर की आत्मकथा (अंग्रेजी अनुवाद) जि २ पृ ९९
१४ तुजुक-ए-जहांगीरी जि २ पृ ९९, मुंडीयार ख्यात (हस्तलिखित) पृ ४ (अ), मुआसिर-उल-उमरा जि १ पृ ५७०, बांकीदास ख्यात पृ २७, वीर विनोद पृ० ८१९ ओझा जि १ पृ ३८८ ८९
१५ मुंडीयार ख्यात (हस्त०) पृ ५ (ब), जोधपुर ख्यात जि १ पृ. १५५
१६ मुंडीयार ख्यात (हस्त०) पृ ८ (अ और ब), जोधपुर ख्यात जि १ पृ १५५ वीर विनोद पृ ८१९, कविराजा ख्यात जि २ पृ ९२ और बांकीदास ख्यात पृ २७, सूरज प्रकाश भाग-२ पृ ३ ३, ४ (जोधपुर से प्रकाशित) ख्यात लेखकों ने गजसिंह की विजय का वर्णन अतिशयोक्ति शब्दों म अवश्य किया है लेकिन फारसी की तवारीख लेखकों ने विजय के संदर्भ म गजसिंह का नाम तक नहीं लिखा है। जहांगीर की आत्मकथा (जि २ पृ २१५) और मुंशी देवी प्रसाद कृत जहांगीरनामा को पढने से केवल इतना पता चलता है कि मुगल सम्राट जहांगीर ने गजसिंह क मनसब की वृद्धि की थी और जालोर एवं सांचोर के परगने उसे प्रदान किये थे। गजगुणरूपक बन्ध का लेखक स्पष्ट लिखता है कि दक्षिण की विजय मे वीरता का प्रदर्शन करने के कारण जालोर और सांचोर के परगने गजसिंह को प्रदान किये गये थे। ऐसा प्रतीत होता है कि फारसी तवारीखों में घटना का वर्णन दर्प से पृथक करके

किया गया है। इसलिये डा० राधेश्याम सक्सेना ने उनके शोध प्रबंध "लाइफ एंड टाइम्स आफ मलिक अम्बर" में गजसिंह की वीरता का उल्लेख नहीं किया है। लेकिन इस संदर्भ में राजस्थानी सामग्री का प्रयोग करना ऐतिहासिक दृष्टि से अनिवार्य प्रतीत होता है। गजगुणरूपकबंध के रचयिता के अनुसार :—

> मद्दण रम मथियो, तेम तुडि दक्खण मारो।
> पातिसाह हुई प्रसन, हुकम किए पच हजारी॥
> महावर नर समद, सीस मनसप बगसोर।
> दे नगारा तोग, तुरी साकपत सिगारे॥
> फुरमाण मुफारसि भोकली, दिढ राजा दलथम सू।
> जागीर दीध जोधाणिपुरे, कणियाणिर साचोर सू॥३॥

(राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से प्रकाशित गजगुणरूपक बंध का पृ. ६७)

१७ जोधपुर ख्यात जि० १ पृ. १५६-५७, मुडीयार ख्यात (हस्त) पृ. १२ (अ) और ओझा जी ने गजसिंह की नियुक्ति का वर्णन किया है। गजगुणरूपक बंध का रचयिता मुगल सम्राट जहांगीर के निमन्त्रण का सारांश इन शब्दों में लिपिबद्ध करता है —

> जिहगीर कहे अमरूप हुई, खुरम कहा जाइ बप्पडो।
> पैसे पताल अंबर चडै, जिहा जाइ तहा पकडो॥३॥

(प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से प्रकाशित ग्रंथ का पृ० ११२)

हाजीपुर के युद्ध का वर्णन जहांगीर की आत्मकथा, इकबाल नामा-ए-जहांगीरी, मआसिर-ए-जहांगीरी, टॉड और वीर विनोद में विस्तार पूर्वक नहीं मिलता। स्वर्गीय रामनारायण दुगड़ ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका अंक १ पृ. १८७-८६ (वि. सं. १६७७ में प्रकाशित) महाराणा भीम सिसोदिया के नाम से लेख प्रकाशित कराया था, जिसमें भीम के ऐश्वर्य का ही वर्णन मिलता है। सम्भवतः इसलिये डॉ. बेनीप्रसाद ने जहांगीर कालीन इतिहास लिखते समय तथा डॉ० बनारसीप्रसाद सक्सेना ने शाहजहां के इतिहास में इस युद्ध का वर्णन नहीं किया। मिर्जा नाथान के ग्रंथ बहारिस्तान-ए गायबी (जि. २ पृ. ७५८) पर युद्ध का वर्णन है। उस वर्णन की पुष्टि गजगुणरूपक ग्रन्थ से होती है। ख्यातो से भी उसकी पुष्टि होती है। गाडण केशोदास के अनुसार यह युद्ध शनिवार १६ अक्तूबर १६२४ ई० के दिन लड़ा गया था। देखिये मारवाड़ी कवि युद्ध का चित्रमय वर्णन किस प्रकार करता है —

> सोलह से समत, हुओ जोधपुर पाले।
> मम्मे गुराणिये मास काती वदाले॥
> पूनम थावर वार, मरद रिण हे पानडी।
> वीर सेन पूरब्ब रिस हेमर पुठ्ठी॥
> सुरतांण खुरम भागो भिडे, नाहि जग्यो थकावै।
> गजसिंह प्रवाडो मंडियो, चढे भीम चीतोडच॥२०॥

(प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर से प्रकाशित ग्रंथ का पृष्ठ २४३)

आश्चर्य है कि डॉ० गोपीनाथ शर्मा ने 'मेवाड़ एण्ड दी मुगल एम्परर्स' लिखते समय यह कैसे लिख दिया कि खुर्रम और शाही सेना के बीच दमदमा के स्थान पर युद्ध लड़ा गया था (देखिये पुस्तक के प्रथम संस्करण का पृष्ठ १६६)

१८. लाहोरी कृत पादशाह नामा जि. १ पृ. १५८-५६, काम्बू जि. १ पृ. २७२-७३, मआसिर उल उमरा जि. १ पृ. २७१, और विनोद पृ. ८१६ और ओझा जि. १ पृ. ३६८

१९. जहांगीर की आत्मकथा (अंग्रेजी अनुवाद की जि. २ पृ. २६०) में गजसिंह के लिये महाराजा का प्रयोग किया है। शाहजहाँ-नामा को पढ़ने से भी स्पष्ट होता है कि महाराजा की उपाधि जहांगीर के शासनकाल में ही मिल गई थी (देखिये शाहजहाँ-नामा जि. १ पृ. ५१४-१५) परन्तु मारवाड़ के ऐतिहासिक साधनों और इम्पीरियल गजेटियर में जसवन्तसिंह प्रथम को मारवाड़ का प्रथम महाराजा लिखा गया है जो सही प्रतीत नहीं होता। मारवाड़ की ख्यातों में भी गजसिंह के लिये महाराजा का प्रयोग किया गया है (देखिये मुडियार ठिकाने की ख्यात (हस्त०) पृ. ३१ (अ) जोधपुर ख्यात जि. १ पृ. १६६-७०)
मारोठ अब एक रेलवे स्टेशन है जो फुलेरा और मेड़ता रोड रेलवे लाइन पर स्थित है।

२०. सहस पचास गांम सहि नव को मुरधर।
बसी सहस रहनां-अमी सहसां हुई पधर॥
हुल मुचे आई पद-अमी सहसा असवारां।
सुलडिया नव लाल-पुड़कारो खरारां॥
राठौड़ मौड़ हिंदुवाण सिर महा दुर्ग गढ़ जोधपुर।
गजसिंह ठु पर नृप सूरसिंह-सहजे धरे सुर असुर॥
(पुस्तक प्रकाश जोधपुर की पांडुलिपि का पृष्ठ ६३)
अजित चरित्र का रचयिता भी गजसिंह की प्रशंसा में लिखता है —
तस्यात्मजः श्री गजसिंहनामा आसो धरण्यां विदितैक कीर्ति।
जगन महाराज पद सुनामा ध्यानग्गम राजते बलिष्ठम॥
(हस्तलिखित पांडुलिपि का पृ० ३३) इस वर्णन की पुष्टि अमीन्ल क़वानीन और पादशाह नामा में भी होती है। गजसिंह को श्रेष्ठ और शक्ति सम्पन्न राजपूत राजा लिखा गया है।

२१. मारवाड़ एण्ड दी मुगल एम्परर्स पृ. ७८

२२. मआसिर-उल उमरा जि. १ पृ. ७५४, टॉड पृ. २ पृ. ६७५-७६, वीर विनोद पृ. ८२१ २२, रतलाम का प्रथम राज्य ले० डा० रघुवीरसिंह सीतामऊ पृ —

२३ जसवन्तसिंह की जन्मपत्री की प्रतिलिपि के अनुसार सिंहासनारोहण के समय महाराजा की आयु १२ वर्ष के लगभग थी। यह प्रतिलिपि मुंशी देवीप्रसाद के संग्रह में उपलब्ध है। अतएव शाहजहाँ ने पहले ठाकुर राजसिंह कूंपावत को मारवाड़ का दीवान नियुक्त किया (देखिये शाहजहाँनामा जि. पृ. ४३, वीर विनोद पृ. ८२२) तत्पश्चात् महेशदास राठौड़ को दीवान नियुक्त किया (देखिये लाहोरी जि. पृ. १२२ और काम्बू जि. २ पृ. २१६) महेशदास की नियुक्ति १६ मार्च १६४१ के दिन की गई थी।

२४ जोधपुर, फलोदी, सोजत, सिवाना और मेड़ता के परगने दिये गये थे (जोधपुर ख्यात पृ. जि. १ पृ. १ ५) लाहोरी जि. २ पृ. ८३, काम्बू जि. २ पृ. २२१, मआसिर उल उमरा जि. १ पृ. ७५४, बांकीदास ख्यात पृ. २ और वीर विनोद पृ. ८२२

२५ लाहोरी जि. २ पृ. १०२,११० ११६, १२८,१३२ और १६४, काम्बू जि. २ पृ. ३०१, जोधपुर ख्यात जि. १ पृ. १८५, मारवाड़ एण्ड दी मुगल एम्परर्स पृ. ८१

२६ लाहोरी जि. २ पृ. ४०७ मआसिर उल उमरा जि. १ पृ. ७५४, शाहजहाँनामा जि. २ पृ. १६०

२७ वारिस जि. १ पृ. १६१, जोधपुर ख्यात जि १ पृ. २०३, बाकीदास ख्यात पृ. ३० और वीर विनोद पृ. ३२४

जो सेना जैसलमेर भेजी गई थी उसका सेना-नायक नैणसी था।

२८ वारिस जि २ पृ. ४०, काम्बु जि. ३ पृ. १८०, मआसिर उल उमरा जि. १ पृ. ७५४

२९. मआसिर उल उमरा के अनुसार शाहजहां के शासन काल के २६ वें जलूसी साल में जसवन्तसिंह को महाराजा की उपाधि प्रदान की गई थी। वारिस और काम्बु के अनुसार महाराजा की उपाधि १६५२–५४ में मिली थी। जोधपुर ख्यात के अनुसार भी १६५४ में उन्हें महाराजा की उपाधि से विभूषित किया गया था।

३०. मारवाड़ एण्ड दी मुगल एम्परर्स पृ. ८६

३१. फतूहात-ए-आलमगीरी (हस्त.) पृ. १८ (अ)

३२. वृजलाल पचोली पाण्डुलिपि पृ. २४ (अ), मारवाड़ एण्ड दी मुगल एम्परर्स पृ. ६०

३३. बर्नीयर के अनुसार जब जसवन्तसिंह की रानी (जो राणा परिवार की थी) को मालूम पड़ा कि उसका पति पांच हजार राजपूतों के साथ लौट रहा था तो उसने भगोड़े पति का स्वागत किले के दरवाजे बन्द करके किया। बर्नीयर के अनुसार रानी ने महाराजा को पति स्वीकार करने से भी इन्कार कर दिया था क्योंकि उसके चेहरे पर कालिख लगी हुई थी और स्वयं चिता में जलने की तैयारी प्रारम्भ करदी। देखिये आर्चीबाल्ड कान्सटेबल का अंग्रेजी अनुवाद (१८६१) पृ. ४०–४१ विदेशी यात्री का यह वर्णन असंगतियों से भरा हुआ होने पर भी राजपूत नारी के आत्म-विश्वास और उनकी वीर रस प्रधान भावनाओं का द्योतक है।

३४. वचनिका राठौड़ रतनसिंह री महेशदासोत री खिड़िया जग्गा री कही पृ. ६० छन्द ७४ (प्रकाशित राजकमल प्रकाशन दिल्ली)

३५. बर्नीयर (कान्सटेबल का अंग्रेजी अनुवाद पृ. ४०–४१) मारवाड़ एण्ड दी मुगल एम्परर्स पृ. ६८

३६. जसवन्तसिंह जोधपुर २६ अप्रेल १६५८ के दिन पहुँचा था। देखिये वृजलाल पचोली पाण्डुलिपि (हस्त०) पृ. २६ (अ)

३७. कानूनगो कृत दाराशिकोह (हिन्दी अनुवाद) पृ १३३–३४

३८. सरकार कृत औरंगजेब का इतिहास जि १ व २ पृ. ५०६ और कानूनगो कृत दारा शिकोह पृ. १३७–३९

३९. कानूनगो कृत दाराशिकोह (हिन्दी अनुवाद पृ. १४१–४२)

बर्नीयर के यात्रा संस्मरण में उद्धृत (कान्सटेबल के अनुवाद के पृ. ८६) मिर्जा राजा का पत्र इस प्रकार है —"आपको इसमें क्या लाभ हो सकता है कि इस मंदभाग्य राजकुमार को सहायता देने का आप प्रयास करें? इस कार्य में लगने से आपका और आपके परिवार का नाश अवश्यम्भावी है। इस प्रकार दारा के हित को भी कोई लाभ न होगा। औरंगजेब कभी आपको क्षमा न करेगा। मैं स्वयं राजा हूँ और शपथपूर्वक विनय करता हूँ कि राजपूतों का रक्त न बहायें। इस आशा में प्रवाहित न हो जाए कि दूसरे राजाओं को आप अपने दल में मिला लेंगें, क्योंकि ऐसे किसी प्रयास का प्रतिकार करने के साधन मेरे पास हैं। इस कार्य से समस्त हिन्दुओं का सम्बन्ध है और आपका यह अग्नि प्रदीप्त करने की अनुमति मैं नहीं

दे सकता जो शीघ्र ही समस्त साम्राज्य में फैल जायेगी और जो किसी प्रयास से शान्त न हो सकेगी। इसके विपरीत यदि दारा को आप उसके भाग्य पर छोड़दें तो औरंगजेब सारी पुरानी बातों को भुला देगा और आपसे वह धन न मांगेगा जो आपने खजवा में हस्तगत कर लिया है। वह तुरन्त आपको गुजरात के शासन पर नियुक्त कर देगा। ·· ··· मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि जो कुछ मैंने कहा है, उसका पूर्ण पालन होगा।'

४०. नुस्का-ए-दिलकश जि. १ पृ ३२-३३, मनूची जि १ पृ ३२६, मारवाड़ एण्ड दी मुगल एम्परर्स पृ. १०१

४१. वीर विनोद के पृ ४३२-३३ पर लेखक ने दारा के निशान का हिन्दी अनुवाद दिया गया है। स्वर्गीय रेऊजी ने भी मारवाड़ के इतिहास (जि १ पृ. २३०) में लिखा है कि दारा ने जसवन्तसिंह की सहायता चाही थी। आकिल खां वाकेयात ए-आलमगीरी में लिखता है (अंग्रेजी अनुवाद का पृ ४२-४३) कि महाराजा ने स्वयं दारा के पास पत्र भिजवाया था और सहायता का आश्वासन दिया था। दारा के निशान से आकिल खां के वर्णन की पुष्टि होती है। देखिये मारवाड़ एण्ड दी मुगल एम्परर्स पृ १०३

४२. बर्नीयर के यात्रा संस्मरण (अंग्रेजी अनुवाद) पृ १८८

४३. नुस्का ए दिलकश जि १ पृ ४५ इसकी पुष्टि मनूची के यात्रा संस्मरण में भी होती है। देखिये स्टोरिया डी मोगोर जि २ पृ १०४

४४. खाफी खां की पुस्तक का इलियट और डाउसन की जि ७ पृ २७१ पर आंशिक अनुवाद

४५. सरकार कृत शिवाजी और उनका युग (अंग्रेजी संस्करण) पृ ६१

४६. देखिये राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से प्रकाशित स्टडीज (आर्टस)

४७ स्वर्गीय यदुनाथ सरकार ने शिवाजी के शब्दों को 'शिवाजी और उनका युग" नामक पुस्तक के पृष्ठ १४१ पर उद्धृत किया है।

४८. जयपुर अखबारात (दसवें जलूसी सन के) सीतामऊ ग्रन्थालय की प्रति भाग २ पृ २६७ और ३४४

४९. उपर्युक्त पृ १९३

५०. उपर्युक्त पृ. २११

५१. जोधपुर ख्यात जि. १ पृ. २४२

५२ तारीख ए-पालनपुर जि १ पृ. १२३

५३. मआसिर-ए आलमगीरी (अंग्रेजी अनुवाद) पृ ८२ व ८६, मारवाड़ एण्ड दी मुगल एम्परर्स पृ. ११०

५४. पचोली पाण्डुलिपि (हस्त) पृ १४३ (ब)

५५. हिस्टोरिकल फ्रेगमेन्टस ऑफ दी मुगल एम्पायर ऑफ दी मराठाज एण्ड दी इंगलिश कन्सर्नस द्वितीय संस्करण १९०५ में प्रकाशित) लेखक राबर्ट ओर्मि पृ ८५

५६. मआसिर उल उमरा जि. १ पृ ७५५ इसकी पुष्टि आलमगीरनामा पृ ३२ से भी होती है।

५७. पृथ्वीसिंह की मृत्यु १२ मई १६६७ के दिन हुई थी। देखिये मारवाड़ एण्ड दी मुगल एम्परर्स पृ. १०९

५८ रिलीजस पोलिसी ऑफ दी मुगल एम्परर्स ले. प्रो. श्री राम शर्मा पृ. १३८
५९ बचाली पाण्डुलिपि पृ. ६१, जोधपुर ख्यात जि. १ पृ. १६८-६
६० 'ए हिस्ट्री ऑफ दी बराकोजन हाउस', डिग्गी ले. डा. कालिका रंजन कानूनगो पृ. ५८ पाद टिप्पणी २२
६१ तारीख-ए मोहम्मद शाही
६२ एक प्राचीन मारवाड़ी लावणी
६३ "भूमिनं नाथ मम पावनेना आगमि शत्रु अमत्र नमिह" अजित चरित्र (हस्त.) पृ. ४५
६४ श्री राम शर्मा रिलीजस पोलिसी पृ. ११६-२०
६५ अदब-ए आलमगीरी (हस्त०) पृ. २६३ अ

४

अन्तिम – चरण
सशस्त्र संघर्ष का युग

(१) महाराजा अजीतसिंह तथा उसके समकालीन मुगल बादशाह

महाराजा जसवन्तसिंह प्रथम की मृत्यु के समय उनके कोई
जीवित नहीं था। परन्तु दो रानियां (रानी जादमन और नरुकी)
थीं। रानी नरुकी के ६ माह का गर्भ था जबकि जादमन के चार माह
था। अतएव जब इन दोनों ने राजपूती परम्परा के अनुसार सती होने
प्रकट की तो स्वर्गवासी महाराजा के सामन्तों ने दोनों को सती -
दिया।[1] २६ नवम्बर को जसवन्तसिंह के सामन्तों ने एक गोष्ठ
समय यह निर्णय लिया गया—(प्रथम) महाराजा के स्वर्गवास व
दरबार में उपस्थित वकील के द्वारा बादशाह के पास भिजवा दी
वकील को यह भी सूचना दी गई कि वह बादशाह के द्वारा
के परगने स्वर्गीय महाराजा के परिवार के लिए प्राप्त करने
(तीसरे) मोर त्वा, राणा राजसिंह मवाड़ और जोधपुर के
भी महाराजा के देवलोक होने की सूचना भिजवाई जाय।
को यह भी पत्र लिखा गया था कि यदि मुगल राज्य
अधिकार करने आए तो उनका किसी भी रूप में विरोध

जसवन्तसिंह की मृत्यु की सूचना दिसम्बर १
औरंगजेब को मिली थी।[3] मनूसी लिखता है कि औ
के परिवार को जमरूद से लौटने का फरमान जारी
पाडुलिपि के अनुसार यह फरमान ३१ दिसम्बर
था।[4] इसी के साथ औरंगजेब की सोजत व
जसवन्तसिंह की विधवा रानियों के पास पहुँच गई
यह सूचना भी भिजवाई थी कि जोधपुर को फिलहाल
जब जसवन्तसिंह के मरणोपरान्त उत्पन्न पुत्र

लौटा दिया जायेगा।[6] लेकिन इस फरमान को कुछ समय के लिए स्थगित रखा गया था क्योंकि पठान मीरखां जोधपुर के पहाड़ी भू-भाग में नियुक्त था और राठौड़ सरदारों के जमरूद से जोधपुर लौटने की स्थिति में मीरखां की जान और माल को खतरा हो सकता था। अतएव जसवन्तसिंह के परिवार का जमरूद से प्रस्थान कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया गया। जैसे ही महाराजा के स्वर्गवास की सूचना जोधपुर पहुँची वैसे ही रघुनाथ पंचोली और केसरीसिंह मेड़ता से रवाना होकर १६ दिसम्बर ... दिन जोधपुर पहुँच गये।[7] ठीक इसी समय अजमेर के मुगल सूबेदार का आदेश भी जोधपुर में सरदारों के नाम पहुँच चुका था कि बादशाह ने मारवाड़ राज्य को खालसा कर लिया है।[8] वाक्या सरकार अजमेर व रणथम्भोर और जोधपुर ख्यात को पढ़ने से पता चलता है कि लगभग २० हजार राठौड़ बादशाह के निर्णय का विरोध करने के लिये जोधपुर शहर के आसपास एकत्र हो गये थे।[9] इन सब सरदारों को स्वर्गवासी महाराजा की विधवा रानी (बड़ी रानी) से प्रेरणा मिल रही थी। जब औरंगजेब को इस विरोध का पता चला तो उसने मर बुलन्द खां को आदेश भिजवाया कि वह राठौड़ों के प्रमुख सरदारों को आश्वस्त करदें कि उनकी जागीरें बदस्तूर बनी रहेंगी।[10] इसका तात्पर्य यह है, जैसा सर जदुनाथ सरकार कृत (औरंगजेब) को पढ़ने से भी प्रकट होता है कि औरंगजेब जोधपुर को मुगल साम्राज्य में मिलाना चाहता था। औरंगजेब के ५० वर्षीय शासन काल में १६७६ का वर्ष एक ऐसा समय था, जब उसने एक प्रमुख राजपूत के सदम में मुगल सम्राटों की वंशपरम्परागत नीति का परित्याग किया था। महाराजा जसवन्तसिंह जीवनपर्यन्त मुगल साम्राज्य के एक स्वामिभक्त मनसबदार बने रहे थे। जोधपुर का राठौड़ राज्य १७वीं शताब्दी का एक प्रमुख हिन्दू राज्य था। उस राज्य को जसवन्तसिंह की मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य में विलीन कर लेने का निर्णय सम्राट की धर्मान्धता, अथवा प्रतिशोध की प्रवृत्ति पर ही आधारित होना चाहिये। औरंगजेब महाराजा जसवन्तसिंह के कार्यों का बदला उनके समस्त परिवार से लेना चाहता था।[11]

जोधपुर का विलीनीकरण करके वह हिन्दू विरोध के सम्भावित प्रमुख केन्द्र-स्थल का समाप्त करना चाहता था। जोधपुर का राज्य बना रहता तो जजिया का विरोध किया जाता, मंदिर विनाश का विरोध हो सकता था। इसलिए उसने इफ्तिखार खां को अजमेर से जोधपुर भेजा और जोधपुर के दुर्ग पर अधिकार करने का आदेश दिया। लेकिन जब इफ्तिखार खां को मनोवांछित सफलता प्राप्त नहीं हुई तो फरवरी १६७६ में औरंगजेब ने ताहिर खां को जोधपुर का फौजदार नियुक्त कर दिया। उसकी सहायता के लिए खिदमतगुजार खां को किलेदार, सेख अनवर को अमीन और अब्दुलरहीम को जोधपुर का शहर कोतवाल नियुक्त

किया।[१२] इसी समय अजमेर में एक शक्तिशाली सेना संगठित की गई। साम्राज्य के वजीर असदखाँ, शाइस्ता खाँ और सम्राट के तृतीय पुत्र अकबर को आदेश दिये गये कि वह दल-बल सहित अजमेर पहुँच जाये।[१३] औरंगजेब की इन गतिविधियों में उसके मन्सूबे स्पष्ट होते हैं। यदि वह वास्तव में मारवाड़ राज्य को कुछ समय के लिए खालसा करना चाहता था तो यह सब सैनिक तैयारी करने की क्या आवश्यकता थी? स्वर्गीय महाराजा की मृत्यु की सूचना पाकर मारवाड़ के राठौड़ नेतृत्वहीन हो गये थे। राठौड़ों के अनुभवी व दक्ष सरदार स्वर्गीय महाराजा के साथ जमरूद थे। अतएव उनकी ओर से खालसा के निर्णय का विरोध करने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। लेकिन इसके उपरान्त भी खानजहाँ बहादुर और हसन अलीखाँ के नेतृत्व में एक सेना जोधपुर पर अधिकार करने के लिये ७ फरवरी १६७९ के दिन भेजी गई।[१४] इसी समय मुहम्मद अमीन खाँ को जागीर पर अधिकार करने का आदेश दिया गया। परिणामस्वरूप राठौड़ों की राजधानी जोधपुर पर मुगलों का अधिकार हो गया। मुगल सेना ने जोधपुर शहर के मन्दिरों को तुड़वा कर और टूटी हुई मूर्तियों के टुकड़ों को ७०० बैल-गाड़ियों में लदवा कर दिल्ली भेज दिया,[१५] ताकि जामा-मस्जिद के सामने के मैदान में मुसलमानों के पैरों तले कुचलने के लिए उन्हें डलवा दिया जाय। इससे यह स्पष्ट है कि औरंगजेब मारवाड़ को धर्मान्ध प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप अधिकार में करना चाहता था।

जब जोधपुर पर मुगलों का प्रभुत्व स्थापित हो गया तब उसके बाद राठौड़ संग्रामसिंह के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप स्वर्गवासी महाराजा के परिवार को अटक पार करने की आज्ञा प्रदान की गई (१४ जनवरी १६७९)।[१६] फारसी का इतिहासकार खाफीखाँ लिखता है कि जब अटक नदी के नाविकों ने राठौड़ों को नाव में बैठाकर नदी पार करवाने में इन्कार कर दिया तो उत्तेजित राठौड़ सरदारों ने नाविक पर हमला बोल दिया और फिर उन्हें मार पीट कर बड़ी कठिनाई से नदी पार की।[१७] अजलाल पचोली पाण्डुलिपि को पढ़ने से पता चलता है कि निवासियों के द्वारा नवाब मीरखाँ को २० हजार रुपया (रिश्वत) देकर राठौड़ों ने अटक का दरिया पार किया था।[१८]

रविवार १९ जनवरी, सन् १६७९ से राठौड़ सरदार सात से दस कोस प्रतिदिन सफर करते हुए १५ फरवरी, १६७९ के दिन लाहौर पहुँचे।[१९] वहाँ उन्होंने जाजपुर की हवेली में पड़ाव डाला। इसी स्थान पर रानी जादमनजी की कोख से बुधवार, १९ फरवरी, १६७९ को रात को ४ बजे के लगभग अजीतसिंह का जन्म हुआ। उसी रात रानी नरूकी ने दलथम्भन को जन्म दिया।[२०] जब ये लोग लाहौर में ठहरे हुए थे तो जोधपुर से सूचना मिली कि बादशाह के आदेश से सैय्यद

अब्दुल्ला मेड़ता आया था और इख्तियार खां ने रूपसिंह तथा केसरीसिंह पंचोली की भेंट उस सैय्यद से करवाई थी। यह भेंट इसलिए करवाई गई थी कि राठौड़ सरदारों ने जोधपुर के किले पर पुनः अधिकार कर लिया था। लेकिन मुगल सम्राट् चाहता था कि जोधपुर का किला उसके अधिकार में बना रहे। अतएव इस भेंट के परिणामस्वरूप जोधपुर के दुर्ग का शांतिपूर्ण हस्तान्तरण हो गया (२१ फरवरी १६७९)।[२१]

ठीक इसी दिन औरंगजेब भी मारवाड़ के अभियान को संचालित करने के लिए अजमेर पहुँचा था।[२२] अजमेर में ही उसे २६ फरवरी के दिन सूचना मिली थी कि जसवन्तसिंह के दो पुत्र उत्पन्न हुए हैं।[२३] अतएव औरंगजेब ने मारवाड़ में अपनी शक्ति को संगठित व व्यवस्थित करने के लिये यत्र तत्र थाने कायम किये।[२४] उसने अजमेर से जसवन्तसिंह के परिवार और सरदारों को सूचना भिजवाई कि वह लोग लाहौर से दिल्ली के लिए रवाना हो जायें।[२५] अतएव २८ फरवरी के दिन जसवन्तसिंह का परिवार दिल्ली के लिये रवाना हो गया और ४ अप्रैल, १६७९ के दिन वह लोग बादली पहुँचे। यहां से कतिपय सरदार (संग्रामसिंह, प्रतापसिंह, श्यामसिंह, दुर्गादास, भारमल और रघुनाथ पचोली) सर बुलन्द खां से भेंट करने के लिए दिल्ली गए। तदुपरान्त स्वर्गीय महाराजा के परिवार को जसवन्तपुरा में स्थित जोधपुर की हवेली में ७ अप्रैल, १६७९ के दिन ठहरा दिया गया। सरदारों की विशेष प्रार्थना पर औरंगजेब ने उन्हें मन्त्रणा के निमित्त गुसलखाने में आमन्त्रित किया था।[२६] वार्तालाप के दौरान औरंगजेब ने सरदारों से कहा था कि अजीतसिंह और दलथम्भण का लालन पालन उसके जनानखाने (हरम) में होगा और जब दोनों बड़े हो जायेंगे तो उन्हें मनसब और राज लौटा दिया जायेगा।[२७] भीमसेन बुरहानपुरी समकालीन तवारीख लेखक लिखता है कि इसी समय औरंगजेब ने जोधपुर का राज्य अजीतसिंह को देने के लिये यह शर्त रखी थी कि वह इस्लाम अंगीकार करे।[२८] औरंगजेब की बात सुनकर दुर्गादास राठौड़, राठौड़ रघुनाथ भाटी और रणछोड़ दास ने निवेदन किया कि सम्राट क्रोध में आकर दोनों बालकों को हरम में रखना चाहता है। ईश्वर ही जाने कि वह इन अबोध बालकों के साथ क्या करना चाहता है।[२९] इसी समय सम्राट ने सर बुलन्द खां के द्वारा सोजत और जैतारण के परगने जागीर में देने का प्रस्ताव भिजवाया था।[३०] जसवन्तसिंह की विधवा हाडीरानी बार-बार प्रार्थना कर रही थी कि जोधपुर उसके भोले पुत्रों को लौटा दिया जाए।[३१] इसी समय नवाब खानजहां बहादुर ने भी त्यागपत्र देने की धमकी दी थी।[३२] लेकिन औरंगजेब अपने पूर्व निर्णय से टस से मस नहीं हुआ।[३३]

एक तरफ जोधपुर राठौड़ों को लौटाने के लिए औरंगजेब तैयार नहीं था

जबकि दूसरी ओर जोधपुर को अधिकार में बनाए रखना सम्राट के लिए दिन प्रतिदिन कठिन होता जा रहा था। ईसरदास नागर लिखता है कि जसवन्तसिंह की मृत्यु के पश्चात् प्रत्येक परिवार के व्यक्ति विद्रोह के लिए तैयार हो गये थे।[34] मारवाड़ राठौड़ों के विरोध को विभाजित करने के उद्देश्य से उसने जसवन्तसिंह के बड़े भाई अमरसिंह के पौत्र इन्द्रसिंह को जोधपुर का टीका दे दिया। उससे ३६ लाख पेशकश वसूल की गई थी।[35] लेकिन औरंगजेब उसके उद्देश्य में सफल नहीं हुआ। इन्द्रसिंह विद्रोही सरदारों का साम-दाम-दण्ड-भेद की नीति के अनुसरण के उपरान्त भी दमन करने में असफल रहा।[36]

औरंगजेब स्वर्गवासी महाराजा के सरदारों पर दबाव डाल रहा था कि वे किसी भी रूप में उसकी इच्छा को स्वीकार करलें। उसने हुक्म दिया कि अजमेर के पास का हिसाब कासिम खां को समझाया जाय। लेकिन केसरीसिंह ने स्वर्गीय महाराजा की शान रखने के खातिर स्वयं का बलिदान दे दिया।[37]

औरंगजेब का यह रवैया देखकर सरदारों ने उससे निवेदन किया कि अजीतसिंह और दलथम्भण दूध-पीते बालक हैं। उन्हें उनकी माताओं से पृथक् करना शोभा नहीं देता। लेकिन जब ये बड़े हो जायेंगे तो बादशाह की सेवा में उपस्थित होंगे।[38] औरंगजेब ने अजीतसिंह को बंदी बना लिया (जुलाई १५,१६७६) तत्पश्चात् औरंगजेब और राठौड़ों के बीच सशस्त्र संग्राम प्रारम्भ हुआ जो आगामी २६ वर्षों तक चलता रहा। इस संघर्ष को विद्रोह नहीं,[39] स्वतन्त्रता संग्राम कहकर पुकारना चाहिये।

ऐसा प्रतीत होता है कि अजीतसिंह के बन्दी बनाये जाने से बहुत पहले ही राठौड़ सरदार बादशाह की इच्छा भांप चुके थे और उन्होंने आपस में निश्चय कर लिया था कि शिशु महाराजा को शाही बन्दीगृह से मुक्त कराकर सुरक्षित स्थान पर ले जाना चाहिए।[40] अतएव एक-एक करके राठौड़ सरदार आज्ञा लेकर मारवाड़ के लिए रवाना होने लगे थे। इन लोगों ने मारवाड़ पहुँच कर सामान्य व्यक्तियों को मुगल सम्राट के विरुद्ध उत्तेजित किया था।[41] औरंगजेब ने हामिदखां और फौलाद खां को आदेश दिया कि जसवन्तसिंह के परिवार को रूपसिंह राठौड़ की हवेली से हटाकर नूरगढ़ में रख दिया जाय। इस समय तक दलथम्भण की अकाल मृत्यु हो चुकी थी और बालक अजीतसिंह को जीवित बचाना राठौड़ों की प्रमुख चिन्ता बन चुकी थी। अतएव रघुनाथ भाटी और रणछोड़ जोधा ने फैसला किया कि दुर्गादास महाराजा के परिवार को लेकर रवाना हो जाय और वे दोनों कम से कम तीन घण्टे तक शाही सेना से जूझते रहें।[42]

बलूंदा के ठाकुर मोहकमसिंह की पत्नी के साथ बालक अजीतसिंह को रूपसिंह राठौड़ की हवेली से बाहर भेज दिया गया था।[43] मुकन्ददास खीची उसका

अंगरक्षक नियुक्त किया गया था। चार घडी तक रघुनाथ भाटी शाही सैनिकों को उलझाये रहा और जब हामिद खां ने चार-पांच कोस के सफर के बाद उन्हें घेर लिया तो रणछोड़ जोधा ने जान पर खेलकर बालक महाराजा की रक्षा की। दो तीन कोस का सफर तय किया होगा कि उन्हें फिर घेर लिया गया। दुर्गादास ने अपने मुट्ठी भर सैनिकों की सहायता से मुगलों का मुकाबला किया। बड़ी कठिनाई से वे लोग २३ जुलाई के दिन अजीतसिंह को मारवाड़ की सीमाओं के भीतर सुरक्षित स्थान तक पहुँचाने में सफल हुए थे।[४४]

इस बीच औरंगजेब ने महाराजा जसवन्तसिंह की सम्पत्ति बेतुल माल में जमा करादी थी और फौलाद खां ने एक घोमिन का लड़का उसके सुपुर्द कर दिया था उसे मुहम्मदीराज[४५] नाम देकर उसके लालन-पालन का काम शाहजादी जेबुन्निसा को सौंप दिया गया।

औरंगजेब के शासन काल में यह दूसरा अवसर था जब एक राजनैतिक बन्दी उसके बन्दीगृह से निकल भागा था। १६६६ में शिवाजी और १६७६ में अजीतसिंह के पलायन पर टिप्पणी करना आवश्यक है। औरंगजेब के सैनिकों ने कम से कम दस कोस तक राठौड़ों का पीछा किया था। उनकी दो बार मुठभेड़ भी हुई। फिर भी वे अजीतसिंह को पकड़ने में सफल क्यों नहीं हुए? कोतवाल फौलाद खां ने एक घोमिन का लड़का ही बादशाह के हवाले किया था अथवा वह वास्तविक अजीतसिंह था? मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि जिन सैनिकों को अजीतसिंह का पीछा करने के लिए भेजा गया था, उन्हें राठौड़ों ने तोड़ लिया था और इसलिए उन्होंने औरंगजेब को प्रसन्न करने के इरादे एक नकली बालक को बादशाह के सुपुर्द कर दिया और असली अजीतसिंह को भाग जाने दिया। मारवाड़ की ख्यातों में राठौड़ों के त्याग और बलिदान को अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से चित्रित किया गया है। जान की हवेली पर रखकर अजीतसिंह को औरंगजेब के बन्दीगृह से मुक्त अवश्य किया गया था लेकिन वह एक तिलस्मी उपन्यास की सी घटना नहीं थी, जिस रूप में समकालीन और परवर्ती इतिहासकारों ने उसका वर्णन किया है। प्रसंगवश औरंगजेब की परिवर्तित नीति पर भी टिप्पणी करना आवश्यक हो जाता है। वह अजीतसिंह को अपने कब्जे में रखकर राठौड़ों से विशेष मान्य करना चाहता था। युद्ध और प्रेम में कुछ भी असंगत नहीं होता। अतएव जोधपुर को खालसा में रखने की दृष्टि से औरंगजेब के इस कार्य को अनुचित नहीं ठहराया जा सकता। केवल अनुचित उसका यह निर्णय था कि आश्वासन देने के बाद भी उसने जसवन्तसिंह के मृत्युपरान्त उत्पन्न पुत्रों को स्वर्गीय महाराजा के उत्तराधिकारी के रूप स्वीकार करने से इन्कार किया था।

औरंगजेब के इस निर्णय ने राठौड़ जाति में कौमी भावना जागृत की।[४६]

संगठित होकर उन्होने तीस वर्ष तक कौमी आजादी के लिए संघर्ष किया। यही कारण था कि शिशु महाराजा के लिये जगह-जगह सुरक्षा की खोज में राठौड घूमते फिरे। जब बल्दा में उसका रखना कठिन हो गया तो अजीतसिंह को सिरोही राज्य मे कालिन्द्री नामक स्थान पर ले गये।[४६] वहा जयदेव नामक पुष्करणा ब्राह्मण ने बालक महाराजा की देखभाल की। लेकिन जब सिरोही के राव ने राठौडों के सिरोही छोड़ने के लिये विवश किया, तो अजीतसिंह को नांदलोई ले जाया गया।[४७] जब अजीतसिंह अरावली पर्वतमालाओ मे छिपा हुआ था, उसी समय दुर्गादास के प्रयत्नों से मेवाड का राणा राजसिंह केलवा की जागीर अजीतसिंह को निर्वाह के लिये देने को तैयार हो गया।[४८] अतएव अजीतसिंह को नादलोई से केलवा स्थानान्तरित कर दिया गया।

राणा राजसिंह के व्यवहार पर टिप्पणी करना आवश्यक है। खानवा के युद्ध के पश्चात् मेवाड और मारवाड राज्यों के कोई विशेष सम्बन्ध नही रहे थे। गोडवाड का प्रदेश दोनों के बीच कबाब मे हड्डी के समान बना हुआ था। राजसिंह के मुगल सम्राट औरगजेब के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध भी मधुर थे। चतुर राजसिंह यह अवश्य समझता होगा कि अजीतसिंह को मेवाड मे जागीर देने से वह औरगजेब का कोप-भाजन बन जायेगा। मैं यह अनुमान करता हूँ कि राजसिंह जोधपुर के राठौड राज्य को विनाश से बचाना चाहता था। ऐसा करने से राजस्थान मे उसका प्रभुत्व स्थापित हो सकता था। यदि वह जोधपुर को विनाश से नही बचाता तो औरगजेब मेवाड को भी नही बख्शता। यह भी सम्भव है कि किशनगढ की राठौड राजकुमारी चारुमती के साथ विवाह कर लेने के बाद राजसिंह को शरण देने के लिये उसकी नव विवाहिता पत्नी ने प्रोत्साहित किया हो। किशनगढ का राजवंश जोधपुर के राठौड़ो राजवंश का ही उपवंश था। चारुमती के साथ राजसिंह का विवाह १६६१ ई० मे ही सम्पन्न हो चुका था।[४९] चारुमती को औरगजेब से व्यक्तिगत द्वेष भी था।

अजीतसिंह के औरगजेब के बन्दी गृह से भागने के साथ मुगल राठौड सम्बन्धों के इतिहास मे एक नया अध्याय प्रारम्भ होता है। औरगजेब ने राजनैतिक स्थिति को सुदृढ बनाने के ध्यान से मारवाड का विलीनीकरण करने का निश्चय किया हो, लेकिन उस युग मे राठौडो ने औरगजेब की इस कार्यवाही को उसकी धर्मान्ध नीति समझा। उसने स्वर्गीय महाराजा के वंश वृक्ष को समाप्त करने का प्रयत्न ही नही किया वरन् जोधपुर के मन्दिरो को तुडवा कर तथा वहा की प्रजा से जजिया वसूल करके एवं इन्द्रसिंह को जोधपुर का टीका देकर बादशाह ने अपनी प्रतिक्रियावादी नीति का पूरा पूरा परिचय दिया था। औरगजेब की इस नीति का परिणाम यह हुआ कि समस्त मारवाड में कौमी स्वतन्त्रता की भावना जागृत हो गई। फतूहात-

ए आलमगीरी का लेखक ईसरदास नागर भी लिखता है कि महाराजा जसवन्तसिंह
की मृत्यु के पश्चात् मारवाड के प्रत्येक [illegible]रिवार का व्यक्ति विद्रोह के लिए तैयार
हो गया था।[५०] यदि डीडवाना में विद्रोह हुआ तो मालाणी के प्रदेश में भी विद्रोह
हुआ।[५१] यह विद्रोह प्रादेशिक नहीं व्यापक था। राठोडों की दृष्टि में यह प्रादेशिक
स्वतन्त्रता के लिए विद्रोह था जबकि मुगलों के दृष्टिकोण में राजनैतिक शक्ति के विरुद्ध
उत्पात था। यदि यह एक प्रादेशिक, राजनैतिक विद्रोह होता तो मारवाड का टीका
इन्दरसिंह को देने की क्या जरूरत थी ? इसका उत्तर देते हुए विद्वान यह कह सकते
हैं कि औरंगजेब तो प्रारम्भ से ही जोधपुर को अस्थायी तौर पर खालसा करना
चाहता था। यदि औरंगजेब की इच्छा स्थायी रूप से मारवाड़ को अधिकार में
करने की नहीं थी तो अजीतसिंह को जोधपुर का शासक मानने से क्यों इन्कार
किया ? मेरी दृष्टि में इसका एक कारण यह हो सकता है कि आलमगीरी अजीतसिंह
के पलायन के बाद भी मुहम्मदीराज को स्वर्गीय महाराजा का औरस पुत्र ही
समझता रहा था। इसीलिए उसने जोधपुर का टीका इन्दरसिंह को दिया होगा।
तात्पर्य यह है कि बीसवी सदी में औरंगजेब के निर्णय को लेकर शोध निबन्ध लिखे जा
सकते हैं लेकिन उस समय (दिसम्बर १६७८) आलमगीर के मस्तिष्क में
प्रतिशोध और धर्मान्धता की मिश्रित भावावनाएं बलवती रही होगी जब उसने
जोधपुर को खालसा करने का निर्णय लिया था। इस प्रश्न पर अनुसंधान होना
चाहिए।

प्रतिक्रियास्वरूप राठोडो ने बालक अजीतसिंह को २ अगस्त, १६७९ के
दिन महाराजा स्वीकार किया।[५२] ताहिर बेग और तहव्वर खा को जोधपुर का
दुर्ग छोडना पडा।[५३] सुजानसिंह ने सिवाना का दुर्ग मुगलो से छीन लिया था।
मेड़तिया राजसिंह ने भी मेडता को मुक्त कराने का विफल प्रयास किया था।[५४]
इन उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि औरंगजेब के निर्णय को धार्मिक
निर्णय समझकर मारवाड के राठोडो में स्वदेश प्रेम और स्वामिभक्ति की भावना
दृढ हुई थी। इस भावना का दमन करने के लिये औरंगजेब स्वयं राजस्थान आया
(सितम्बर १६७९ में वह अजमेर पहुँच चुका था) उसने शाहजादा अकबर को
राठोडो का दमन करने के लिये नियुक्त किया।[५५] मारवाड को परगनो में विभक्त
करके प्रत्येक परगने में एक फोजदार नियुक्त किया। उस समय इन्दरसिंह को
राजकीय सत्ता से च्युत करके उसे निमाज का थानेदार नियुक्त किया गया था।
इतनी कोशिश के उपरान्त भी औरंगजेब महाराजा अजीतसिंह का अता–पता खोजने
में असफल रहा। उसने क्रोध में आकर सोजत और जैतारण के विद्रोहियों का
कठोरतापूर्वक दमन करने का काम हामिद खा को सोपा। लेकिन इस सबका परिणाम
यह निकला कि मारवाड में मुगलों के विरुद्ध घृणा की भावना फैल गई।[५६]

औरगजेब के प्रयत्नो को विफल करने के लिये राठौड दुर्गादास के दूत के रूप मे गोपीनाथ और मदपाल मेवाड के महाराणा राजसिंह के पास गये (सितम्बर-अक्टूबर १६७९) और मेवाड की सैनिक सहायता की याचना की।[४७] महाराणा राजसिंह ने सहायता देना स्वीकार कर लिया। सम्भवत उन्हे भी औरगजेब का मारवाड को खालसा करने का निर्णय राजपूतो के लिये घातक प्रतीत हुआ होगा। परिणामत मेवाड और मारवाड की संयुक्त सेनाओ को मुगलो का विरोध सहना पड़ा। देसूरी के घाटी की तलहटी मे मुगल सेना पड़ी हुई थी। मुगल सेना के पहुँचने से पहले अजीतसिंह को केलवा पहुँचा दिया गया था।[४८] लेकिन जब मुगल सेना के तीन भाग तहव्वर खां, हसन अली खा और शाहजादा मुअज्जम व आजम के नेतृत्व मे मेवाड को घेरने के लिये रवाना हुए, तो राजसिंह ने मेवाड और मारवाड का राजकीय परिवार भोमट क्षेत्र में स्थित नेनवारा नामक सुरक्षित स्थान तक पहुँचा दिया।[४९] ४ जनवरी १६८० के दिन देबारी का रक्त रंजित युद्ध लड़ा गया। इस युद्ध मे राजपूतों की पराजय हुई और उसके बाद उदयपुर शहर को नष्ट-भ्रष्ट किया गया।[५०]

जिस समय औरगजेब मेवाड़ में व्यस्त था, उस समय सोनिग ने जालोर, सोजत, भिनाना और जैतारण मे उपद्रव किये थे।[५१] अतएव ७ अप्रैल १६८० के फरमान के द्वारा मुकर्रम खा को आदेश दिया गया था कि वह सोजत और जैतारण के विद्रोहियो का दमन करे। नाडोल नामक गाँव मे चार हजार राठौड जमा हो गये थे। उस समय दुर्गादास राठौड भी उनके निकट पड़ोस मे कोशलाव तक पहुँच चुका था।[५२] एक ऐसा सकट उपस्थित हो गया था कि जिससे मुगल सत्ता को खतरा हो सकता था। विद्रोहियों ने शान्ति और व्यवस्था को प्राय समाप्त कर दिया था। इन्दरसिंह विद्रोहियों का पीछा कर रहा था।[५३] उधर पाली के ठाकुर उदयसिंह चापावत के द्वारा दुर्गादास राठौड को तोड़ने की विफल कोशिश भी की थी।[५४] औरगजेब भी उत्पातो का दमन करने के लिये भरसक प्रयत्न कर रहा था।[५५] जिस समय हामिद खा के नेतृत्व मे मुगल सेना सोजत और जैतारण के विद्रोहियों का दमन कर रही थी, नवाब मुकर्रम खा जोधपुर की रक्षा करने का प्रयत्न कर रहा था उसी समय डीडवाना और साभर मे भी विद्रोह उठ खड़े हुए।[५६] विद्रोहियों का उद्देश्य प्रशासन और व्यवस्था को समाप्त कर देना था। अपना खर्च चलाने के लिये वे लूटमार करते थे, वे साहूकारो को लूटकर अपना काम चलाते थे। परिणामत समस्त भू-भाग मे कृषि और व्यापार ठप्प पड गया था।[५७]

इन विद्रोहो का दमन करने के लिए शाहजादा अकबर को सोजत मे नियुक्त किया गया था।[५८] (१६ जुलाई १६८०) उसने जोधपुर से सोजत और नाडोल के व्यापारिक मार्ग की सुरक्षा के लिये प्रहरी नियुक्त किये थे।[५९] ११, १६८०-

के दिन अकबर को नाडोल के युद्ध मे विद्रोहियों को परास्त किया था। उस समय संधि समझौते की वार्ता प्रारम्भ की गई।[७०] दुर्भाग्यवश २२ अक्टूबर १६८० के दिन राजसिंह की मृत्यु हो गई। अतएव शान्ति समझौता क्रियान्वित नही हो सका।

शाहजादा अकबर को देसूरी की घाटी के मार्ग से मेवाड पर आक्रमण करना था। अतएव वह दल-बल सहित १९ नवम्बर १६८० के दिन नाडोल मे रवाना हुआ और तीन दिन पश्चात् भीलवाडा पर अधिकार कर लिया। लेकिन कुम्भलगढ के दुर्ग से राजपूतों के प्रहार हो रहे थे। अतएव भीलवाडा से आगे बढना कठिन हो गया।[७१] अकबर की दूसरी असफलता ने उसे बादशाह का कोप-भाजन बना दिया था। शाहजादे ने भी बादशाह को उसकी गतिविधियो की सूचना देना बन्द कर दिया था।[७२] राजपूतो ने इस स्थिति से लाभ उठाकर शाहजादे नाइब तहव्वर खा के द्वारा वार्तालाप करना प्रारम्भ कर दिया।[७३]

नाडोल के युद्ध में राजपूतो की पराजय और उसी दिन राणा राजसिंह की मृत्यु ने स्पष्ट कर दिया था कि मुगलों के विरुद्ध संघर्ष जारी रखना कठिन हो गया था।[७४] दुर्गादास और सोनिग मुगल परगनो (सोजत और जैतारण) को लूटकर काम चला रहे थे।[७५] अतएव इन परिस्थितियो मे हाजी फतहअली खा और मुरतजा खा के द्वारा दुर्गादास ने तहव्वर खा के पास सूचना भिजवाई कि यदि गोडवाड का परगना महाराजा अजीतसिंह के लिये जागीर में प्रदान कर दिया जाय तो राठौड विरोध बंद कर देंगें। लेकिन औरगजेब इस प्रस्ताव से सहमत नहीं हुआ।[७६] सम्भवत वह राठौडों का पूर्ण समर्पण चाहता था। इसी समय राठौडों ने तहव्वर खा के द्वारा प्रार्थना की थी कि वारा का परगना अजीतसिंह के निर्वाह के लिये दे दिया जाय। लेकिन औरगजेब इस पर राजी नही हुआ। उसने राठौडो में फूट डालने के उद्देश्य से वह परगना बूंदी के राव राजा भावसिंह हाडा की विधवा बहिन हाडी रानी को प्रदान कर दिया।[७७] अतएव राठौडो के पास विरोध करने के अतिरिक्त कोई रास्ता शेष नहीं बचा। उन्होने तहव्वर खा के द्वारा शाहजादा अकबर को उसके पिता के विरुद्ध विद्रोह करने के लिये उत्तेजित किया। अकबर और तहव्वर खा के लिये भी कोई रास्ता नही बचा था। एक ओर औरगजेब नाराज था, दूसरी ओर राठौडो की लूटमार ने उनकी रसद और कुमुक के रास्ते भी बन्द कर दिये थे। मुगल सेना देसूरी की घाटी मे घिरी हुई थी। अतएव उस समय राजपूतों के साथ साट-गाठ करना ही उचित प्रतीत हुआ।[७८] राजपूतों ने शाहजादे की विद्रोही भावना को उत्तेजित करने के लिये उससे कहा कि बादशाह की धर्मान्ध नीति मुगल साम्राज्य की जडों को खोखला कर रही है। यदि वह राजपूतों पर विश्वास करके उनके सहयोग से राजसिंहासन प्राप्त कर लेगा तो मुगल साम्राज्य विनाश से बच सकता है।[७९] इन चिकनी चुपडी बातों का अकबर के मस्तिष्क पर मनोवांछित प्रभाव

पड़ा। उसने ३ जनवरी १६८१ के दिन नाडोल के पड़ाव पर अपने आपको भारत का बादशाह घोषित कर दिया। राजपूतों के प्रत्येक प्रयत्न के उपरान्त भी अकबर के राज्याभिषेक की सूचना औरंगजेब को १४ जनवरी के दिन मिल गई।[६०] इस प्रकार दुर्गादास और उसके साथियों ने मुगल साम्राज्य में गृह कलह के बीज बो दिये। परिणामस्वरूप औरंगजेब की दमनकारी नीति शिथिल पड़ गई। मेवाड़ और मारवाड़ के राजघराने विनाश से बच गये। कूटनैतिक सफलता के लिये इतिहासकारों ने दुर्गादास की सराहना नहीं की है यह दुर्भाग्यपूर्ण है। दुर्गादास की सफलता इसलिये भी महत्वपूर्ण हो जाती है कि उसने अकबर के द्वारा अजीतसिंह के लिये मारवाड़ के महाराजा की उपाधि सात हजार जात व सवार की मनसब तथा वैधानिक मान्यता प्राप्त करली थी। जब औरंगजेब उसके अधिकार को चुनौती दे रहा था उस समय अकबर ने उसे मान्यता प्रदान करदी थी।[६१]

राजतिलक समारोह के पश्चात् अकबर राजपूतों की सेना के सहित नाडोल से अजमेर की दिशा में रवाना हुआ। औरंगजेब को सूचना मिली थी "पच्चीस हजार सवारों (राजपूतों) की जमइय्यत के साथ बुरे इरादों और बेहूदा उम्मीदों के साथ घाटी देसूरी से निकल कर''' '' वह परगना जीतारण (जैतारण) के पास पहुँच गया है।"[६२] उस समय औरंगजेब ने वीरता और साहस का अपूर्व प्रमाण दिया। वह अजमेर से रवाना होकर नौ कोस की दूरी पर स्थित देवराई तक पहुँच गया। बादशाह को आशा थी कि अकबर क्षमा याचना कर लेगा। लेकिन जब ऐसा नहीं हुआ तो आगे बढ़कर अकबर के पड़ाव से पांच कोस की दूरी पर शाही सेना ने पड़ाव डाल दिया। उस समय शाही सेना में "एक बहुत बड़ा तहलका मचा हुआ था।'[६२अ] अजमेर से कूच करने से पहले औरंगजेब अपने पुत्र शाहआलम और अन्य बड़े बड़े सरदारों के नाम फरमान जारी कर चुका था कि जो सरदार जहां भी नियुक्त हों, तुरन्त ही अपनी अपनी जगहों से कूच करके शीघ्रातिशीघ्र शाही सेना में आकर शामिल हो जायें।[६३] स्पष्ट है कि औरंगजेब चिंताग्रस्त स्थिति में फंस गया था। ईसरदास नागर भी इसका समर्थन करता है। वह लिखता है–"बादशाह ने अपनी सूझ बूझ और दूरगामी विचारों के आधार पर विरोधियों के गुट में फूट डालने की तदबीर सोची और तत्काल ही फरमान वाला शान बनाम बदनसीब अकबर अपने हाथ से लिखकर और स्वयं के हस्ताक्षर से जारी किया।" फरमान का मजमून यह था–"मेरे बाबा, मेरे बहादुर, तुम्हारी अक्ल पर तुम्हारी सूझ बूझ पर लाखों तहसीन, आफरीनशाबाश, तुमने राजपूतों को जो जंगली जानवरों की सी आदतें रखते हैं और जो बिदकने (भड़कने) के बाद कभी खूंटे से नहीं बंधते, जाल में नहीं फंसते हैं, अपनी अक़लातूनी और हिकमत अमली से जाल में फंसाकर यहां तक ले आये हो। लेकिन इतना और करो कि आज की रात किसी भी ढंग से लोभ

प्रलोभन देकर उन्हे रोके रखो। सवेरे ही बाबा शाहग्रालम ग्रौर दूसरे बडे-बडे सरदार उनकी अनगिनती सेनाओ के साथ शाही सेना मे पहुँच जायेंगे और अल्लाह ने चाहा तो, इन हालात को देखते हुए, हर एक को गिरफ्तार करके उसको उसकी बदमाशियों (बुराइयो) के लिये सजा दी जायेगी।"[८४] यह फरमान जुलूदार के द्वारा अकबर के पास भिजवाया गया था और उसे आदेश दिया गया था कि जब शाहजादा राजपूतों के साथ बैठा हो उस समय उसे यह फरमान दिया जाय।

इसके अतिरिक्त इनायत खा को, जो तहव्वर खा का श्वसुर था, आदेश दिया गया कि वह पत्र लिखकर उसे शाही खेमे मे बुलवा ले अन्यथा उसका परिवार और सम्पत्ति नष्ट कर दी जायेगी। तहव्वर खा अपने श्वसुर का पत्र प्राप्त करके भयभीत हो उठा उसने अकबर अथवा दुर्गादास से वार्तालाप किये बगैर ही आधी रात के समय अपने चन्द साथियो के साथ अकबर का पक्ष छोड दिया और औरंगजेब के खेमे में पहुँच गया। इस प्रकार जब औरंगजेब का फरमान लेकर जुलूदार अकबर के खेमे मे पहुँचा था उस समय तक तहव्वर खा की जीवन लीला औरंगजेब के आदेशानुसार शाही खेमे में समाप्त हो चुकी थी। एक विश्वासघाती स्वार्थी और डरपोक व्यक्ति का इसी प्रकार अन्त होना है।[८५]

औरंगजेब ने जैसा सोचा था वैसा ही हुआ। जुलूदार को राजपूत प्रहरी ने पकड लिया। उसे दुर्गादास के पास ले जाया गया। दुर्गादास और उसके साथियो ने वह फरमान पढ़ा। भयभीत होना स्वाभाविक था। वे अकबर के डेरे की तरफ गये। लेकिन अकबर के सेवको (ख्वाजा सरायो) ने शाहजादे को नीद मे परेशान करने से मना कर दिया। अतएव उन्होने तहव्वर खाँ के डेरे में तलाश कराई। उस समय उन्हें मालूम पड़ा कि खान अपने कुछ साथियों के साथ बादशाह की सेवामें गया हुआ था। इन परिस्थितियो मे दुर्गादास और उसके साथियों को विश्वास हो गया कि अकबर उन्हें धोखा दे रहा है और प्रातःकाल उन सबका अन्त हो जायेगा। अतएव ऊषा काल मे (एक घडी रात रहे) दुर्गादास और उसके समस्त राजपूत साथी युद्ध का मैदान छोड़कर जोधपुर के लिये रवाना हो गये। जब प्रातःकाल अकबर की निद्रा भंग हुई तो उसके पास भी इसके अलावा कोई रास्ता नही था कि अपने जीवन की रक्षा के लिये राठोडो के पीछे भाग जाय। वह एक हाथी, पचास घोड़े, बीस ऊँट, जिन पर खजाना लदा हुआ था और ३५० सवारों को लेकर स्वयं भी भाग गया। अकबर के पलायन के साथ ही संकट के घनघोर बादल साफ हो गये। औरंगजेब की चिन्ता दूर हो गई।[८६]

जब २६ जनवरी १६८१ की सुबह अकबर की निद्रा भंग हुई तो मालूम पड़ा कि तीन घंटे पहले राजपूत युद्ध का मैदान छोड़कर जा चुके थे। अकबर उसके ३५० घुडसवारों के साथ जैतारण से २० मील की दूरी पर स्थित रामगढ़ नामक स्थान

पर राठोडो के साथ मिल गया। औरंगजेब ने अकबर और राजपूतो का पीछा करने के लिये शाहजादा मुअज्जम को भेजा था। लेकिन दुर्गादास शाहजादा अकबर को जिलवाडा के मार्ग से जालोर ले जाने मे सफल हुआ। वहा से उसे साचोर ले जाया गया। जब वे लोग साचोर के पास कोट कोलर नामक स्थान पर पडाव डाले हुए थे, उस समय मुअज्जम ने अजीतसिंह को जोधपुर और अकबर को गुजरात का सूबा प्रदान कराने का लालच दिया। लेकिन दुर्गादास ने मुअज्जम के इस प्रस्ताव पर विश्वास नही किया। वह ५०० राठोडो के साथ अकबर को सिरोही पालनपुर और थिराद तक ले गया। मआसिर-ए-आलमगीरी के अनुसार थिराद से अकबर को मेवाड के राणा जयसिंह के पास ले गया था। लेकिन मैं समझता हू कि जैतारण से भागने के बाद जब अकबर और दुर्गादास जिलवाडा गये थे, तब ही मेवाड के राणा जयसिंह ने उनके प्रति शुष्क व्यवहार किया होगा और इसलिये दुर्गादास उसे जालोर ले गया था। अकबर का डूंगरपुर, बांसवाडा, मेवाड मे सलम्बूर और छप्पन के पहाडो मे भटकने का वर्णन डॉ० गोपीनाथ शर्मा ने "मेवाड एण्ड दी मुगल एम्प्रर्स" नामक ग्रन्थ मे किया है। डा० शर्मा भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि अकबर ने दुर्गादास के साथ नर्मदा नदी पार करके शिवाजी के पुत्र और उत्तराधिकारी शम्भाजी के दरबार मे शरण प्राप्त करने का प्रयत्न किया था। अकबर ११ जून, १६८१ के दिन शम्भाजी के दरबार मे कोकण मे उपस्थित हुआ था।[८७]

शाहजादा अकबर को दुर्गादास मराठो की शरण मे क्यो ले गया ? सम्भवत वह औरंगजेब की शक्ति को विभाजित करना चाहता था। उसका यह भी विचार हो सकता है कि अकबर को शरण देने के बहाने राठोडो और मराठो मे औरंगजेब के विरुद्ध एक सधि समझौता हो जायेगा तो मारवाड विनाश से बच जायेगा। तीसरा कारण यह हो सकता है कि एक शरणागत को विनाश से बचाने के लिये दुर्गादास ने अंत मे अकबर को शम्भाजी के दरबार मे ले जाने का निर्णय किया हो। राजस्थान मे मेवाड और वागड भूमि के शासको ने अपने शुष्क व्यवहार के द्वारा इस प्रदेश मे अकबर की सुरक्षा को अनिश्चित और असम्भव बना दिया था। अतएव दुर्गादास उसे दक्षिण ले गया।

परवर्ती घटनाओं ने दुर्गादास के कार्य का औचित्य सिद्ध कर दिया था। जब औरंगजेब को मालूम पडा कि अकबर सहित दुर्गादास दक्षिण पहुँच गया था तो मारवाड का प्रबन्ध मुहम्मद अजीमुद्दीन, आसद खा और राजा भीमसिंह को सौंप कर वह स्वय सितम्बर १६८१ में दक्षिण के लिये रवाना हो गया।[८८] दक्षिण के लिये रवाना होने से पहले औरंगजेब ने मेवाड के राणा जयसिंह के साथ २४ जून १६८१ के दिन सधि करली थी। इस सधि की एक शर्त यह थी कि जब अजीतसिंह वयस्क हो जायेगा तो उसे राज्य और मनसब प्रदान कर दिया जायेगा। यद्यपि इस

शर्त के साथ मारवाड में शांति स्थापित हो जानी चाहिये थी, लेकिन उसके बाद भी मारवाड म उपद्रव होता रहा।[८६]

औरंगजेब के राजस्थान से प्रस्थान कर जाने के पश्चात् मारवाड के सरदार उन मार्गों को लूटने लगे थे जो मुगलो के प्रत्यक्ष अधिकार मे थे। १३ जुलाई, १६८१ के दिन सोनिंग ने पोकरण के मुगल थाने के दो गांवो को लूटा था।[६०] अतएव इनायत खां को उसके दमन का कार्य सौंपा गया। उस समय तक सोनिंग परगना जैतारण मे घुस चुका था। बादशाह ने आदेश दिया कि शिहाबुद्दीन खां जैतारण के फौजदार तारीन की सहायता के लिये पहुँच जाय।[६१] इसी समय अजबसिंह ने नाडोल को लूट लिया।[६२] विद्रोही राठौडो ने डीडवाना को भी लूटा था और वहा से वे लोग मनराना पहुँच गये थे। जहां उन्होने अशांति उत्पन्न करदी थी।[६३] जब औरंगजेब को इसकी सूचना मिली तो उसने ऐतकाद खां को आदेश दिया कि मेडता के आसपास एकत्रित विद्रोहियो का दमन करे। नवंबर १६८१ मे राठोडो और मुगलो के बीच एक सशस्त्र युद्ध लडा गया। इस युद्ध में ५०० राठोड काम आये थे।[६४] फरवरी १६८२ मे राठोडों ने परगना मांडलपुर पर धावा बोला और वहा से पर्याप्त मात्रा मे सम्पत्ति प्राप्त की।[६५] इसी समय वे पुन जैतारण आये। परगना जेतारण की शांति और व्यवस्था भग हो गई।[६६] जोधा उदयभान और उदावत अमरासिंह के नेतृत्व म राठोडो ने भाद्र जून के स्थान पर मुगलो को पराजित किया।[६७] अखयराज ने बालोतरा से मुगलो के पैर उखाड दिये।[६८] १४ अप्रेल १६८५ के दिन कूपावत राठोडों ने सिवाना के मुगल किलेदार मुरदिल खा को कानाना के युद्ध मे पराजित करके मुगलों की मारवाड मे स्थिति निर्बल बना दी थी।[६६]

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि १६८१ से १६८७ के बीच मारवाड में औरंगजेब के विरुद्ध भावनात्मक सगठन बन चुका था। इस सगठन का लक्ष्य औरंगजेब की प्रभुसत्ता का अन्त करना था। मुगल सम्राट ने जसवन्तसिंह की मृत्यु के पश्चात् उसके पैतृक राज्य को खालसा करने का जो निर्णय किया था, उसके विरोध म देश प्रेम की भावना उत्पन्न हुई। देश की रक्षा के लिय राठौडों ने पहले सशस्त्र सग्राम भी लडे और मुगल प्रदेशो की व्यवस्था को भग करके, मुगलों के प्रत्यक्ष शासन को समाप्त करने की अनवरत कोशिश की। इस समय इन्हें प्रेरणा देने के लिये कोई नेता नही था। केवल स्वामी-धम की भावना थी। इस भावना का दमन औरंगजेब की सैनिक शक्ति नही कर सकी। यह विरोध उस समय तक चलता रहा जबतक अजीतसिंह को जोधपुर का वश परम्परागत राज्य प्राप्त नही हो गया। तीस वर्ष तक कोई जाति स्वदेश की रक्षा के लिय संघर्ष करती रहे तो उस संघर्ष को स्वतन्त्रता का युद्ध ही कहकर पुकारा जायगा।

पत्र के प्रस्ताव पर अपनी स्वीकृति प्रदान करदी। ईसरदास ने राठौड दुर्गादास को इस बात के लिये तैयार कर दिया कि सैफुन्निसा बेगम को उसके दादा के पास पहुँचा दिया जाय। बेगम के दबाव डालने पर दुर्गादास भी औरगजेब के दरबार मे जाने के लिये तैयार हो गया। ईसरदास के साथ दुर्गादास और सैफुन्निसा बेगम बादशाह की सेवा मे २० मई १६९८ के दिन उपस्थित हुए।[112] वार्तालाप के दौरान औरगजेब को मालूम पडा कि अशांति के समय मे भी दुर्गादास ने उसकी पोत्री को पढाने लिखाने के लिये एक अध्यापिका अजमेर से बुलवाई थी। उसी अध्यापिका ने सैफुन्निसा बेगम को कुरान पढाई थी। औरगजेब इससे बहुत अधिक प्रसन्न हुआ। बादशाह की आज्ञा के उत्तर मे ईसरदास ने दुर्गादास राठौड की ओर से मनसब और बख्शीश के लिये प्रार्थना की। बादशाह ने २०० जात का मनसब और गुजरात के कोष से एक लाख रुपया दो किश्तों मे इस शर्त पर प्रदान करने की स्वीकृति प्रदान की थी कि दुर्गादास शाहजादा अकबर के पुत्र बुलन्दअख्तर के साथ अहमदाबाद तक सुरक्षित पहुँच जाय।[113] शुजातखा को यह आदेश भी प्राप्त हुआ था कि मेडता की भूमि दुर्गादास के निजी व्यय के लिये उसे प्रदान करदी जाय। शुजात खा की आज्ञा से ईसरदास नागर उसके (दुर्गादास) पीछे लगा रहा और बुलन्द अख्तर सहित दुर्गादास और ईसरदास नागर बादशाह की सेवा मे उपस्थित हुए। उस समय औरगजेब ने ३००० जात और २५०० सवार का मनसब दुर्गादास को प्रदान किया था।[114] इसी समय दुर्गादास की जागीर मे परगना धन्धूका शामिल किया गया था। उसे एक जडाऊ जमधर और मोतियो की अगूठी भी बख्शी गई थी। स्पष्ट है कि औरगजेब अपने पौत्र और पौत्री को सकुशल प्राप्त करके दुर्गादास से प्रसन्न हुआ था। अतएव अवसर से लाभ उठाते हुए दुर्गादास ने बादशाह से निवेदन किया कि अजीतसिंह के अपराध क्षमा कर दिये जाए। औरगजेब ने अजीतसिंह के लिये जालौर और सिवाना की जागीर १६९९ में प्रदान की थी और मुजाहिद खा को इसके ऐवज मे पालनपुर प्रदान किया था।[115] औरगजेब इतना सर[illegible] सम्राट नही था कि वह केवल दुर्गादास की प्रार्थना पर अजीतसिंह [illegible] और साचोर की जागीर प्रदान कर देता। सम्भवत अजीतसिंह को [illegible] वह मारवाड मे राठोडो के उपद्रवों को शात करना चाहता था। जोधपुर से बहुत दूर सीमा पर प्रदान की गई थी। यह भी हो बादशाह जागीर प्रदान करके अजीतसिंह के व्यवहार और [illegible] चाहता हो। कुछ भी हो दुर्गादास उसकी कूटनीति मे सफल शान्तिपूर्ण ढग से सिवाना, साचोर और जालौर को प्राप्त था जिसे उसके साथी दो दशकों के सशस्त्र सघर्ष के बाद भी

नहीं हुए थे। साथ ही दुर्गादास ने औरंगजेब का विश्वास भी प्राप्त कर लिया था। १६९८–९९ में खबर आई थी कि शाहजादा अकबर फारस से वापस लौट रहा था। उस समय औरंगजेब ने दुर्गादास के नाम फरमान भेजा था कि वह मुल्तान तक पहुंच कर शाहजादे की अगवानी करे। मई १६९९ में दुर्गादास मेड़ता से रवाना होकर कन्धार तक भी गया था। लेकिन कन्धार पहुँचने पर उसे पता चला कि अकबर के हिन्दुस्तान लौटने की खबर केवल अफवाह मात्र थी। अतएव वह मारवाड़ लौट आया।[११६]

मिरात-ए-अहमदी को पढ़ने से पता चलता है कि १६९८–९९ में मारवाड़ और गुजरात में भयंकर अकाल पड़ा था। अतएव अजीतसिंह ने बादशाह की सेवा में चार हजार घुड़सवार सहित उपस्थित होने की आज्ञा चाही। उस समय अजमेर के खजाने से अजीतसिंह को तीन हजार रुपया नकद प्रदान किया गया था और १५०० जात व ५०० सवार का मनसब भी प्रदान किया गया था।[११७] इस प्रकार मुगलों और राठौड़ों के बीच क्षणिक शांति स्थापित हो गई थी।

गुजरात के मुगल सूबेदार शुजात खां की मृत्यु के साथ मुगलों और राठौड़ों के बीच पुनः तनावपूर्ण सम्बन्ध प्रारम्भ हो गये थे। शुजात खां के स्थान पर शाहजादा आजम की नियुक्ति करते समय उसे बादशाह की ओर से आदेश मिला था कि दुर्गादास को बंदी बना लिया जाय, अथवा उसका काम तमाम कर दिया जाय, जिससे वह अजीतसिंह और उसके जाति बन्धुओं को उत्तेजित नहीं कर सके।[११८] उस समय दुर्गादास सूबा गुजरात में पाटन का फौजदार था। सफदर खां और अफजल खां के पाटन पहुँचने से पहले ही दुर्गादास पाटन छोड़कर मारवाड़ में चला आया था।[११९] मारवाड़ लौटने पर उसे पता चला कि उसके जाति बन्धु युद्ध से ऊबकर मेवाड़ चले गये थे अथवा कुछ ने मुगलों की सेवा ग्रहण कर ली थी। अर्थात् मारवाड़ की आर्थिक स्थिति बिगड़ी हुई थी। अजीतसिंह भी उससे प्रसन्न नहीं था। अतएव जिस प्रतिशोध की भावना को लेकर दुर्गादास मारवाड़ आया था उससे कोई लाभ नहीं हुआ, अपितु औरंगजेब ने राठौड़ों की निर्बलता से पूरा-पूरा लाभ उठाया। १७०२ में मुगलों ने एक बार फिर दमनकारी नीति अपनाई। परिणामतः अजीतसिंह १७०२ में जोधपुर पर अधिकार स्थापित करने में सफल नहीं हो सका।

मारवाड़ की स्थिति से दुःखित होकर दुर्गादास गुजरात चला गया। उसने गुजरात के नये सूबेदार शाहजादा आजम के साथ संधि करली थी। उसे ३००० जात और २००० सवार का मनसब भी मिल गया।[१२०] दुर्गादास और

अजीतसिंह के मतभेद ने औरंगजेब की मृत्यु तक मारवाड को मुगल सम्राट के अधिकार में बना रहने दिया, लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि औरंगजेब राठौड़ों की भावना का दमन करने में सफलीभूत हो गया था। समस्त साम्राज्य को दाव पर लगा कर भी (जैसाकि समकालीन विदेशी यात्री मनूसी[121] ने लिखा है) मुगल सम्राट औरंगजेब मारवाड के राठौड़ो की स्वतन्त्र भावना का अन्त नहीं कर सका। उसकी दमनकारी नीति ने अजीतसिंह को मुगलों का कट्टर शत्रु बना दिया था। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् उसके निर्बल एवं अयोग्य उत्तराधिकारियों के शासन काल में प्रतिशोध की भावना से क्षुब्ध अजीतसिंह ने अपने पैतृक राज्य को ही पुन प्राप्त नहीं किया अपितु सैय्यद भाईयों के साथ बादशाह निर्माता बनकर जीवन के शेष दिनों में वह मुगल साम्राज्य को खोखला करने में भी सफल हुआ था। औरंगजेब की नीति की प्रतिक्रिया स्वरूप मारवाड के राठौड़ राजपूत सदैव के लिए मुगलों के अशुभचिंतक बन गए। अवसरवादी नीति का अनुसरण करके अजीतसिंह और उसके उत्तराधिकारियों ने पतनोन्मुख मुगल साम्राज्य के विघटन-काल में ईंट से ईंट बजा दी थी।[122]

१७०७ में औरंगजेब की मृत्यु की सूचना प्राप्त करते ही उसके महत्वाकांक्षी पुत्र राजगद्दी प्राप्त करने के लिए मुगलों की परम्परा के अनुसार सशस्त्र संग्राम में जूझ उठे। मुअज्जम और आजम ने अपने पिता की वसीयत की उपेक्षा करते हुए जाजू का युद्ध लड़ा था। युद्ध से पूर्व दोनों प्रत्याशियों ने अजीतसिंह के पास सहायता के लिए संवाद भिजवाये थे।[123] उस समय अजीतसिंह जालौर में था।[124] परिस्थितियों से लाभ उठाकर उसने १२ मार्च १७०७ के दिन मारवाड की वंश परम्परागत राजधानी जोधपुर पर अधिकार कर लिया।[125] शाहजादा आजम उसे महाराजा की उपाधि और हफ्तहजारी मनसब से विभूषित कर चुका था।[126] मुअज्जम और आजम के अजीतसिंह को उनके पक्ष में मिलाने के प्रयत्नों के दो कारण ये हो सकते हैं। अजीतसिंह को संघर्ष में उलझा कर अशांति के वातावरण को समाप्त अथवा कम से कम स्थगित करना उन दोनों का लक्ष्य हो सकता था। यह भी सम्भव है कि अजीतसिंह को पक्ष में करके राठौड़ों की संगठित सैनिक शक्ति से दोनों ही लाभ उठाना चाहते हों। लेकिन जाजू के संग्राम में तटस्थ रहकर अजीतसिंह मेड़ता, सोजत और पाली के प्रदेश पर अपना अधिकार पुनर्स्थापित करने में सफल हो गया।[127] उसने मुगलों के राजनीतिक प्रभुत्व ही समाप्त नहीं किया। वह उनके सांस्कृतिक प्रभाव को भी समाप्त करने पर जुट गया। जोधपुर शहर की मस्जिद तुड़वा दी, अजान पर प्रतिबन्ध लगा दिया और गऊ हत्या का निषेध कर दिया।[128] अजीतसिंह का यह कार्य ईंट का जवाब पत्थर से देने के समान था। १६७९ में मारवाड पर अधिकार कर लेने

के पश्चात् मुसलमानों ने हिन्दू धर्म और संस्कृति को नष्ट करने के लिए मन्दिर तुड़वाये थे और टूटी हुई सामग्री से मसजिदों का निर्माण करवाया था। अजीतसिंह ने उसकी स्थिति को सुदृढ़ करने के विचार से अथवा प्रतिशोध की भावना से प्रेरित होकर मारवाड़ की भूमि से मुगलों का नामोनिशान मिटाने के लिए ऐसा किया होगा। सम्भवतः वह मारवाड़ का मुगलों के साथ सम्बन्ध विच्छेद करना चाहता था।[१२९] परन्तु यह अजीतसिंह की कल्पना मात्र थी। मारवाड़ का छोटा सा राज्य अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाए रखने की स्थिति में नहीं था। अतएव जाजू के युद्ध के विजेता मुअज्जम ने राज्यारोहण के पश्चात् मिहराब खां को जोधपुर पर अधिकार करने के लिए रवाना किया।[१३०] वह स्वयं भी आगरा से अमावर और आमेर के मार्ग से रवाना हुआ। सवाई जयसिंह को अपदस्थ करके आमेर का राज्य उसके छोटे भाई विजयसिंह को प्रदान कर दिया गया। जब सम्राट बहादुरशाह अजमेर में पड़ाव डाले हुए था, उस समय अजीतसिंह ने मुकन्दसिंह और बख्तसिंह को बादशाह की सेवा में भेजा।[१३१] दुर्गादास भी बहादुर शाह से अनुमति प्राप्त करके मुगल दरबार में उपस्थित हुआ। उसी समय अजीतसिंह और दुर्गादास के नाम दो शाही फरमान जारी किए गए थे।[१३२] बहादुरशाह की सेवा में मुकन्दसिंह और बख्तसिंह को परिस्थितिवश भेजा गया था। मिहराब खां मेड़ता के युद्ध में १२ फरवरी, १७०८ के दिन राठौड़ों को पराजित कर चुका था।[१३३] सवाई जयसिंह अपने राज्य को खो बैठा था। अतएव मारवाड़ को भावी विनाश से बचाने के लिए शांतिपूर्वक समर्पण करना ही अजीतसिंह ने श्रेयस्कर समझा होगा। इससे उसकी दूरदर्शिता का प्रमाण मिलता है। लेकिन संकट के घोर क्षणों में भी वह व्यक्तिगत रूप से मुगल दरबार में जाने को टालता रहा। जब उसे दरबार में लाने के लिए खान-ए-जमान जोधपुर पहुँचा था तो उस समय अजीतसिंह ने पत्र द्वारा ही समर्पण किया था।[१३४] अतएव बहादुरशाह ने उसके विरुद्ध बख्शी उल मुल्क-शाह नवाज खां के नेतृत्व में एक शक्तिशाली सेना रवाना की।[१३५] बहादुरशाह स्वयं भी अजमेर से प्रस्थान करके मेड़ता तक पहुँच गया था।[१३६] उस समय अजीतसिंह जोधपुर से आगे बढ़कर आनन्दपुर तक पहुँचा और उस पड़ाव पर बादशाह के दरबार में व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुआ।[१३७] उस समय उसे पचास हजार रुपया नकद और एक घोड़ा सुनहरी जीन सहित प्रदान किया गया था (फरवरी १७, १७०८) परन्तु इसके कुछ समय बाद ही अजीतसिंह को महाराजा की उपाधि और ३५०० जात ३००० सवार का मनसब प्रदान किया गया था, जिनमें से एक हजार दो अस्पा सवार थे।[१३८] ऐसा प्रतीत होता है कि बहादुरशाह ने अजीतसिंह के गुनाह तो माफ कर दिये थे लेकिन जोधपुर उसे प्रदान नहीं किया। इसका कारण यह था कि बादशाह को अपने छोटे

भाई कामबक्श के विद्रोह की सूचना दक्षिण भारत से प्राप्त हो रही थी। वह यह जानता था कि विद्रोह का दमन करने के लिए उसे दक्षिण भारत जाना पडेगा। अजीतसिंह, सवाई जयसिंह और मेवाड का राणा अमरसिंह द्वितीय एक दूसरे के मित्र थे। अतएव उत्तर भारत से अनुपस्थिति के समय बहादुरशाह इन तीनों राजपूत राजाओ को शक्ति सम्पन्न स्थिति में छोडना ठीक नही समझता था। अतएव उसने मार्च अप्रेल में तो अजीतसिंह को उसके निर्वाह के लिए सोजत, सिवाना और फलौदी के परगने ही प्रदान किये थे।[१३९] अजीतसिंह ने बादशाह की अधीनता स्वीकार करली थी। उसके कुछ समय बाद ही मेवाड के राणा ने भी बादशाह की अधीनता स्वीकार करली।

दक्षिण प्रस्थान करने से पूर्व बहादुरशाह ने अजीतसिंह और सवाई जयसिंह को उसके साथ दक्षिण जाने का आदेश दिया था। (२५ फरवरी १७०८)[१४०] यद्यपि दोनो ही अपदस्थ शासक थे, परन्तु फिर भी उन्होने बादशाह को प्रसन्न करने के लिए उसके साथ दक्षिण जाना स्वीकार किया। जब शाही पडाव सूबा मालवा में मण्डलेश्वर में था उस समय दुर्गादास के सुझाव पर अजीत-सिंह और जयसिंह शाही सेना से पृथक होकर बरास्ता मेवाड उनके वतन के लिए रवाना हो गये।[१४१] राणा अमरसिंह ने देबारी के स्थान पर दोनो का स्वागत किया। इस समय (३० अप्रैल, १७०८) तीनो राजाओ ने तय किया कि वे मुगलो के प्रभुत्व से उनके वतन को मुक्त करने के लिए सगठित होकर प्रयत्न करेगे। राणा अमरसिंह ने अपनी पुत्री का विवाह जयसिंह के साथ करके राजनैतिक गठ बन्धन को सुदृढ किया। दहेज में सैनिक सामग्री प्रदान की गई थी। जिसका उपयोग करके सवाई जयसिंह अपने खोए हुए राज्य को पुन प्राप्त कर सकता था।[१४२]

अजीतसिंह ने देबारी से रवाना होकर जोधपुर पर अधिकार किया (१२ जुलाई, १७०८) और वहा से वह जयसिंह को आमेर पर अधिकार करवान के लिए साभर की दिशा मे रवाना हुआ। सितम्बर १७०८ म मुगल सनापतियो के विरुद्ध साभर का युद्ध लड़ा गया। इस युद्ध मे दुर्गादास राठौड न भी भाग लिया था। मुगल सेना पराजित हुई। जयसिंह आमेर को अधिकार म लाने मे सफल हुआ।[१४३]

अजीतसिंह ने इसी समय नागौर और डीडवाना पर भी अधिकार किया था।[१४४] साभर के युद्ध के पश्चात् बहादुरशाह ने भी अजीतसिंह के प्रति उदार नीति अपनाई थी। उसे जोधपुर वतन जागीर के रूप मे प्रदान कर दिया गया और उसके पुत्रों को मनसब तथा जागीर प्रदान किए गए। इसी अवसर पर अजीतसिंह के ज्येष्ठ पुत्र अभयसिंह को सूबा अहमदाबाद मे स्थित धूलूता का परगना जागीर मे प्राप्त हुआ था (१० दिसम्बर, १७१०)।[१४५] परिणामस्वरूप सिक्खो

के विद्रोह का दमन करने के लिए अजीतसिंह की नियुक्ति की गई (अक्तूबर १७११) उसे सोरठ का फौजदार भी नियुक्त किया गया (१२ नवम्बर, १७११)[१४६] स्पष्ट है कि मुगल सम्राट बहादुर शाह प्रथम ने राठौड़ों और मुगलों के बीच तनावपूर्ण सम्बन्धों को न्यून करने की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किए थे। जब जोधपुर पर अधिकार बनाये रखना कठिन हो गया तो अजीतसिंह को वैधानिक मान्यता प्रदान करना ही साम्राज्य के हित में था।

फरवरी १७१२ में बहादुर शाह की मृत्यु हो गई। उसका उत्तराधिकारी जहांदार शाह चूड़ामन जाट का मित्र था। अतएव अजीतसिंह ने चूड़ामन जाट के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करके मुगल सम्राट जहांदार शाह से अहमदाबाद की सूबेदारी प्राप्त करली।[१४७] दिसम्बर १७१२ में मुगल राजगद्दी के लिए संघर्ष प्रारम्भ हुआ। उस समय अजीतसिंह ने जहांदार शाह के निमन्त्रण की अव-हेलना करके अपने अन्य मित्र सवाई जयसिंह और चूड़ामन के समान तटस्थ रहना ही ठीक समझा।[१४८] गृह युद्ध में जहांदार शाह पराजित हुआ और फर्रुखसियर विजयी रहा।[१४६]

जहांदार शाह के स्वल्पकालीन शासनकाल में राजपूत राजाओं ने सगठित होकर मुगल सम्राट से सुविधाएं प्राप्त की थीं। जहांदार शाह के आदेश से ही जजिया का वसूल किया जाना बंद किया गया था।[१५०] उसका परिणाम यह हुआ कि मुगल दरबार की राजनीति में हिन्दुओं का भी एक शक्तिशाली दल उत्पन्न हो गया था जिसकी उपेक्षा करना फर्रुखसियर की सामर्थ्य में नहीं रहा।

फर्रुखसियर के सिंहासनारोहण के पश्चात् नवाब जुल्फिकार खान की हत्या हुई थी। अजीतसिंह का सशंकित होना स्वाभाविक ही था। फर्रुखसियर, शासन के प्रथम वर्षों में सैय्यद बन्धुओं के हाथ की कठपुतलीमात्र था। अतएव अजीतसिंह ने राज्याभिषेक के समय उसके वकील के द्वारा फर्रुखसियर को बधाई संदेश भिज-वाया था। फर्रुखसियर इससे संतुष्ट नहीं हुआ। वह बारम्बार इस पर बल देता रहा कि अजीतसिंह और जयसिंह को व्यक्तिगत रूप से उसके दरबार में उपस्थित होना चाहिए।[१५१] बादशाह ने दोनों राजाओं के मनसब भी बढ़ा दिए थे। अजीतसिंह को हफ्त हजारी मनसब प्रदान किया गया था। फरमान के द्वारा उसे सूचित भी किया गया था कि उसके सब अपराध क्षमा कर दिये गये थे। उसे थट्ठा का सूब-दार भी नियुक्त किया गया था। लेकिन अजीतसिंह की दृष्टि गुजरात पर लगी हुई थी। अतएव वह असन्तुष्ट बना रहा।[१५२] फर्रुखसियर का अप्रसन्न होना स्वाभाविक ही था। ठीक इसी समय फर्रुखसियर को सूचना मिली कि अजीतसिंह ने मारवाड़ में मसजिदों को तुड़वा कर उनकी सामग्री से मन्दिर बना दिये थे।[१५३] नागौर के राव इन्द्रसिंह के दो पुत्रों की हत्या दिल्ली में हुई थी। इन्द्रसिंह को

अजीतसिंह पर संदेह था। अतएव उसने भी बादशाह को अजीतसिंह के विरुद्ध उत्तेजित किया होगा।[१४४] 'अजितोदय' के रचयिता के अनुसार किशनगढ के राजा राजसिंह ने भी फर्रुखसियर को अजीतसिंह के विरुद्ध उत्तेजित किया था।[१४५] मीर जुमला भी यह सोच रहा था कि उसके प्रतिद्वन्द्वी सैय्यद हुसैन अली खा को राजधानी से बाहर भेज दिया जाय। अतएव उसने भी बादशाह को अजीतसिंह के विरुद्ध हुसैन अली खा के नेतृत्व मे सेना भेजने के लिए अवश्य उत्तेजित किया होगा।[१४६] फर्रुखसियर के लिए अजीतसिंह का दमन करना राजनैतिक दृष्टि से आवश्यक था। जयसिंह और अजीतसिंह का सगठन मुगल साम्राज्य के लिए हानिकारक हो सकता था।[१४७] अतएव अजीतसिंह के विरुद्ध एक सेना ६ जनवरी, १७१४ के दिन रवाना की गई।[१४८] मुगल सेना की सख्या एक लाख के लगभग थी और अजीतसिंह के पास उस समय १८ हजार सैनिक ही थे।[१४९] अतएव उसने चापावत भगवानदास को मुगल सेनापति से भेंट करने के लिए जोधपुर से रवाना किया और यह स्वय राई का बाग नामक स्थान पर पहुँच कर प्रतीक्षा मे ठहर गया। अजीतसिंह के प्रधान ने मेडता और जोधपुर के बीच स्थित रिडमोडी नामक स्थान पर सैय्यद हुसैन अली खा से वार्तालाप किया। तत्पश्चात् भडारी खीवसी और रघुनाथ मे अजीतसिंह की ओर से सधि की निम्नलिखित शर्तें तय की।[१५०]

(१) अजीतसिंह मुगल सम्राट को पेशकस देगा।
(२) जब कभी आवश्यकता होगी अजीतसिंह स्वय मुगल दरबार मे उपस्थित होगा।
(३) महाराज कुमार अभयसिंह को मुगल दरबार मे भेजा जायेगा।
(४) बाई इन्द्रकवर (अजीतसिंह की पुत्री) का डोला मुगल सम्राट की सेवा मे भेजा जायेगा।

सधि की शर्तों को देखने से ऐसा लगता है कि फर्रुखसियर जैसे निर्बल शासक के सम्मुख भी अजीतसिंह ने पूर्ण आत्म-समर्पण किया था। अजीतसिंह की आर्थिक स्थिति शोचनीय अवस्था मे थी। वह जोधपुर से एक बार फिर हाथ नहीं धोना चाहता था। अतएव उसने निर्बलता के क्षणो से उपर्युक्त सधि को १६ मार्च, १७१४ के दिन स्वीकार कर लिया। लेकिन हुसैन अली खा ने इस समय जोधपुर पर अधिकार करने का स्वर्ण अवसर छोड दिया। इसका एक मात्र कारण यह था कि दरबारी राजनीति के कारण उसका दिल्ली मे होना अधिक आवश्यक था। उसका बड़ा भाई सैय्यद अब्दुल्ला उसे बार-बार पत्र लिखकर दिल्ली आने की माँग कर रहा था।

यह अवश्य सत्य है कि भावुक व्यक्तियो की दृष्टि मे उपर्युक्त सधि अपमानजनक हो सकती है लेकिन इस समय अजीतसिंह और हुसैन अली खा के बीच जो

गुप्त समझौता हुआ था उसके परिणामस्वरूप ही मुगल सम्राट फर्रुखसियर का पतन हुआ।

इस संदर्भ मे फर्रुखसियर पर आरोप लगाया गया कि उसने हुसैन अली खा को कुचल देने के लिये अजीतसिंह को पत्र लिखे थे। "इबरत नामे" के अतिरिक्त यह वर्णन फारसी की अन्य तवारीखो व मारवाड की ख्यातो मे नही मिलता।[161] १७१४ से पहले अजीतसिंह और फर्रुखसियर की व्यक्तिगत भेंट कभी नही हुई थी। एक अजनबी को जो बादशाह का शत्रु था, इस प्रकार का नाजुक कार्य किस प्रकार सौंपा जा सकता था? यदि अजीतसिंह और फर्रुखसीयर के बीच किसी भी प्रकार की गुप्त साठ-गाठ होती तो वह अमीर-उल-उमरा हुसैन अली खा को जोधपुर पहुँचने देता। अजीतसिंह को उसकी ओर से सन्धि वार्ता प्रारम्भ करने की आवश्यकता नही होती। अतएव इबरतनामे के इस वर्णन पर एकाएक विश्वास करना कठिन है।

सधि पर हस्ताक्षर करने के बाद हुसैन अली तो दिल्ली लौट गया। उसने शाइस्ताखा को अजीतसिंह की लडकी का डोला लाने के लिये जोधपुर रवाना किया। ११ दिसम्बर, १७१५ के दिन सैय्यद अब्दुल्ला की हवेली से इन्द्रकवर का विवाह फर्रुखसियर के साथ हिन्दू और मुस्लिम रस्म-रिवाज के अनुसार सम्पन्न हुआ[162]।

इन्द्रकवर के विवाह के पश्चात् मुगल दरबार मे अजीतसिंह का प्रभाव उत्तरोत्तर बढता गया। उसके सैय्यद भाईयो के साथ सम्बन्ध भी प्रगाढ होते गये। मुगलो और राठौडो के बीच विरोध की खाई पटने लगी। १० दिसम्बर, १७१५ के दिन बादशाह फर्रुखसियर ने अजीतसिंह को गुजरात का सूबेदार भी नियुक्त कर दिया[163]। अजीतसिंह ने उसकी स्थिति का पूरा-पूरा फायदा उठाया। उसने अहमदाबाद जाते समय भीनमाल और जालोर पर अधिकार स्थापित कर लिया[164]। उसके सेनानायक पेमसी ने जो उस समय मेडता मे नियुक्त था, नागौर पर अधिकार करके इन्द्रसिंह को अपदस्थ कर दिया। फरवरी १७१७ मे नागौर का परगना उसकी जागीर में शाही आदेश से शामिल कर दिया गया[165]। १७१५ से १७१७ के बीच अजीतसिंह को प्रसन्न करने के लिये अतिरिक्त मनसब और खिल्अत प्रदान की गई थी।[166] इस समय फर्रुखसियर और सैय्यद भाईयो के बीच मनमुटाव प्रारम्भ हो गया था। अतएव बादशाह उनके विरुद्ध एक शक्तिशाली गुट तैयार करना चाहता था। इसी उद्देश्य से उसने (फर्रुखसियर) नाहर खा को अजीतसिंह के पास भेजा था। लेकिन बादशाह ने यह नही समझा कि नाहर खा उसके विपक्षी सैय्यद भाईयो का अच्छा मित्र था। अतएव फर्रुखसियर अजीतसिंह को प्रयत्न करने पर भी उसके विपक्षियो से पृथक् नहीं कर सका। राज राजेश्वर की उपाधि और हफ्त हजारी मनसब भी अजीतसिंह को लालच नही दे सके।[167]

फर्रुखसियर की आज्ञानुसार अजीतसिंह दिल्ली पहुँच गया। उस समय स्थिति ऐसी बन गई थी कि सवाई जयसिंह के अतिरिक्त कोई भी बडा सरदार बादशाह के साथ नहीं था। फर्रुखसियर ने अजीतसिंह की हत्या करने का भी असफल प्रयत्न किया था। अतएव अजीतसिंह ने सैय्यद भाईयों के साथ मिलकर उसको गद्दी से उतार दिया और उसके स्थान पर एक बीस वर्ष के नवयुवक को दिल्ली के राजसिंहासन पर बैठा दिया।[१६८] इस नवयुवक (बादशाह रफीउद्दजात) ने अजीतसिंह की प्रार्थना पर हिन्दूओं से जजिया वसूल करना बन्द कर दिया। हिन्दूओं की तीर्थयात्राओं पर जो प्रतिबन्ध लगे हुए थे वे भी हटा दिये गये थे।[१६९] इस प्रकार अजीतसिंह ने मुगल राजदरबार में प्रभावशाली स्थान प्राप्त कर लिया था। महाराणा संग्रामसिंह ने अपने पत्र में अजीतसिंह की स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा था[१७०]—

"हिन्दुस्थान रो जेजीयो छुडायो ने तीरया —
अटकाव थो सो मीटायो लीख्या सो सगली हकी—
कत वाच्या थी घणी खुस्याली हुई सो राज स—
रीखा उठा पेहली कोई हिन्दुवां माहे ··
हुओ ना अभु हेगो ईश्वर ईसा मोटा·······
ना घणी घणी ऊपजावे ईणी वातम ·········
है वडो नफो है सो ईना दीन तुरका रा आ ··
या सोवे आपणा आसीरत हुआ·········· ·(ह)
कीकत लीखी सो ई वारू हिंदुस (था) नरो मोज·······
लो उणाहीज थी है ने ··········पण
कर टेठ थी जाणे है सो आपा हैं ···
दरकार है ने कीता अदेश तुरक
री बात आगे ही हलकी नीजर आ (ई वि)
(ना) वीचारे काम न करेगा ने हलका (ला) गा ने अ (ठा)
री वात सदा रजरा घररी है ज्यूही जाणे काम चा—
करी पुरमावेगा राज करे आखा हिंदुस्थान (न में)
नचीताई है म्हे तो घणा नचीता हा (घणा कोई)"

जब अजीतसिंह दिल्ली से अहमदाबाद के लिये लौटने लगा तो फर्रु॰ की विधवा इन्द्रकंवर को भी इस्लाम त्याग कर उसके पिता के साथ लौट आज्ञा बादशाह रफीउद्दजात ने प्रदान करदी। खाफी खां लिखता है पहला अवसर था जब एक स्त्री ने इस्लाम का परित्याग करके पुन अंगीकार किया था।[१७१] वह स्त्री भी साधारण स्त्री नहीं थी।

बादशाह की विधवा बेगम थी। इस प्रकार १७१६ तक अजीतसिंह भारत का एक प्रमुख राजपूत राजा बन चुका था। वह मुगल साम्राज्य का भी एक प्रभावशाली सरदार था।

अजीतसिंह और सैय्यद बन्धुओं की प्रभावशाली स्थिति से विरोधी दल में ईर्ष्या उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था। विरोधी दल का नेता निजाम उल-मुल्क था। छबीलाराम नागर भी निजाम के साथ था। इन दोनों ने मिलकर शाहजादा अकबर के पुत्र निकोसीयर को आगरा की गद्दी पर बैठा दिया[१७२]। इस कार्यवाही ने सैय्यद भाईयों की स्थिति बिगाड़ दी थी। उस समय उन्होंने अजीतसिंह के द्वारा सवाई जयसिंह को अपने पक्ष में मिलाने का प्रयत्न किया था। इसीलिये अजीतसिंह को उसकी पुत्री इन्द्रकंवर सहित स्वदेश लौटाने की अनुमति दे दी गई थी। अजीतसिंह ने कालाडेरा के स्थान पर ५ नवम्बर, १७१६ के दिन सवाई जयसिंह के साथ भेंट की। दोनों अजमेर के रास्ते से जोधपुर जाने के लिए तैयार हो गये[१७३]। इसी समय सवाई जयसिंह को सोरठ की फौजदारी और आमेर की वतन जागीर प्रदान की गई थी। अजमेर की सूबेदारी का अतिरिक्त उत्तरदायित्व भी अजीतसिंह को प्रदान किया गया था। हाड़ौती के प्रदेश में शांति स्थापित करने का उत्तरदायित्व भी अजीतसिंह को सौंपा गया था[१७४]। इस प्रकार रफीउदरजात और रफीउद्दौला[१७५] के शासनकाल में अजीतसिंह मुगल साम्राज्य का एक प्रमुख सरदार बन गया था। प्रत्येक महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर उससे परामर्श लिया जाता था[१७६]। यह सब गुटबन्दी का परिणाम था।

यह तो सत्य है कि सैय्यद भाईयों की इच्छानुसार रफीउदरजात और निकोसीयर के बीच होने वाले सम्भावित संघर्ष से सवाई जयसिंह को पृथक् रखने के लिये अजीतसिंह ने कालाडेरा में आमेर नरेश से भेंट की और उसे जोधपुर लेजाकर अपनी पुत्री बाई सूरजकंवर का विवाह सवाई जयसिंह के साथ रचाया था, लेकिन इस सबके उपरान्त भी अजीतसिंह ने अपने व्यक्तित्व को बनाये रखा था। इस कथन के प्रमाण में हम १७२०-२१ की घटना को उद्धृत कर सकते हैं। सैय्यद हुसैन अली खां निजाम उल मुल्क का दमन करने के लिये दक्षिण जा रहा था। उस समय सैय्यद अब्दुल्ला की बारम्बार प्रार्थना पर भी अजीतसिंह ने दक्षिण जाना स्वीकार नहीं किया।[१७७] अजीतसिंह यह जानता था कि उसकी मित्रता सैय्यद भाईयों के लिए राजनैतिक आवश्यकता थी। अतएव वह उनकी उपेक्षा करने की स्थिति में था। इससे यह भी निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अठाहरवीं शताब्दी के प्रथम चरण में अजीतसिंह की मुगल साम्राज्य में स्थिति सैय्यद भाईयों की तुलना में अधिक ठोस थी। सैय्यद अब्दुल्ला ने अजीतसिंह को पत्र लिखा था कि वह छबीलाराम नागर को अपने पक्ष में मिलाने के लिए प्रयत्न

करे। इसीलिये अजीतसिंह ने छबीलाराम नागर को पत्र लिखा था।[१५८] स्पष्ट है सैय्यद भाइयों ने हिन्दू सरदारों को अपने पक्ष में मिलाने के लिए अजीतसिंह के प्रभाव का उपयोग किया था। अतः जब सैय्यद भाईयों के बुरे दिन आये, तो मुहम्मदशाह प्रथम के शासन काल में अजीतसिंह को गुजरात और अजमेर की सूबेदारी से मुक्त कर दिया गया।[१५९] नवाब शम्सउद्दौला उसे संदेह की दृष्टि से देखता था। अतएव उसके विरुद्ध सेनायें भेजी गई। नागौर, सांभर और डीडवाना के प्रदेश उससे छीन लिए गए।[१६०] अजीतसिंह ने अपने जामाता सवाई जयसिंह के द्वारा संधि की (जून १६२१) परिणामस्वरूप उसके ज्येष्ठ पुत्र अभयसिंह को मुगल दरबार में रहना पड़ा।[१६१]

अभयसिंह को भंडारी रघुनाथ के द्वारा विश्वास में लेकर उससे बख्तसिंह (अभयसिंह के छोटे भाई) के नाम पत्र लिखवाया गया। अभयसिंह का पत्र प्राप्त करके बख्तसिंह ने उनके पिता की जोधपुर में हत्या कर दी (२४ जून, १७२४)।[१६२] इस प्रकार राज राजेश्वर महाराजा अजीतसिंह की जीवन लीला समाप्त हुई।

मारवाड़ के इतिहास में पितृहत्या कोई नई बात नहीं थी। लेकिन बख्तसिंह ने अपने पिता की हत्या उनके बड़े भाई के आदेश पर की थी। अभयसिंह ने नागौर की जागीर का आश्वासन बख्तसिंह को दिया था। बख्तसिंह नम्बर दो का पुत्र था। अतएव नागौर की जागीर तो उसे एक न एक दिन साधिकार मिल ही जाती। अतएव हत्या की पृष्ठभूमि में बख्तसिंह की व्यक्तिगत वैमनस्यता प्रमुख हो सकती है। समकालीन इतिहास कामवार लिखता है कि अजीतसिंह के उसकी पुत्र वधु (बख्तसिंह की पत्नी) के साथ अनैतिक सम्बन्ध थे।[१६३] जिसकी सूचना अभयसिंह ने पत्र के द्वारा बख्तसिंह को दी थी। उत्तेजित होकर बख्तसिंह ने अपने पिता की हत्या करदी। लेकिन इसके उपरान्त भी मैं मानता हूँ कि राजनैतिक हितों के कारण अजीतसिंह की हत्या करवाई गई थी। सवाई जयसिंह भी, जो अजीतसिंह का दामाद और मित्र था, महाराजा से ईर्ष्या करने लगा था। जोधपुर ख्यात के अनुसार उसने ही अभयसिंह को उत्तेजित किया था।[१६४] तारीख-ए-मुजफ्फरी का लेखक लिखता है कि वजीर कमरुद्दीन खां ने बख्तसिंह को नागौर की वतन जागीर का लालच देकर उसके द्वारा अजीतसिंह की हत्या करवाई थी।[१६५] वैसे महाराजा अजीतसिंह अठारहवीं शताब्दी के हिन्दू और मुसलमान सरदारों के समान साधारण चरित्र वाले सरदार थे। उसने १७२४ में ही दो नवयुवतियों के साथ विवाह रचाया था।[१६६] अतः कामवार के इस वर्णन में अतिशयोक्ति प्रतीत नहीं होती कि उसने बख्तसिंह की पत्नी के साथ अनैतिक सम्बन्ध स्थापित कर लिया हो। परन्तु कामवार के वर्णन को केवल इस सीमा तक ही स्वीकार करना चाहिये कि बख्तसिंह उत्तेजित हुआ और उसने उत्तेजना में पिता की हत्या करदी। बख्तसिंह को उत्तेजित करने के लिये

मुगल दरबार में जो षड्यन्त्र किया गया था उसमें साम्राज्य के वजीर और सवाई जयसिंह के अतिरिक्त महाराणा अमरसिंह का भी हाथ था। यह सब अजीतसिंह के प्रभावशाली व्यक्तित्व को रोड़ा समझते थे। उसे हटाना चाहते थे। अतएव अभयसिंह को विश्वास में लेकर उससे बख्तसिंह को पत्र लिखवाया होगा।

अजीतसिंह का जन्म और मृत्यु—हत्या एवं षड्यन्त्र के वातावरण में हुई थी। उसने जीवन के अधिकांश दिनों में कष्ट उठाये थे। लेकिन राठौड़ कुल का दीपक बुझने से पहले अपने प्रकाश से सर्वत्र अन्धकार को दूर कर गया था। योग्यता के कारण वह मुगल साम्राज्य का प्रभावशाली हिन्दू सरदार बन गया था। साम्राज्य के पतन के युग में अजीतसिंह ने उसके पूर्व कष्टों का प्रतिशोध औरंगजेब के निर्बल उत्तराधिकारियों से लिया था। उसके शासन काल में मारवाड़ के राठौड़ राज्य के ऐश्वर्य समृद्धि का विकास हुआ था। (देखिये संलग्न मानचित्र)

मारवाड़ के इतिहास में दुर्गादास राठौड़ का महत्त्व—

आसकरण नीवावत के पुत्र दुर्गादास[१८७] अथवा दुर्गादास राठौड़ ने महाराजा जसवन्तसिंह प्रथम की मृत्यु के पश्चात् मारवाड़ को मुगल साम्राज्य का अंग बनने से बचाया था। उसने अपनी जान को जोखिम में डालकर जसवन्तसिंह के मृत्योपरान्त पुत्रों की रक्षा की। मेवाड़ और मारवाड़ की कटुता को समाप्त करके महाराणा राजसिंह के साथ संधि की। औरंगजेब के पुत्र अकबर को विद्रोह के लिये उत्तेजित करके मुगल साम्राज्य की दमनकारी शक्ति का विभाजन किया। अकबर को दक्षिण ले जाकर उसने राठौड़ों और मराठों के बीच गठबन्धन करने का प्रयत्न किया। इस प्रकार स्वामी धर्म का पालन करते हुए दुर्गादास ने मारवाड़ के राठौड़ राज्य को खालसा होने से बचाया था।

१६८७ के बाद उसके और अजीतसिंह के बीच मनमुटाव उत्पन्न हो गया था। कुछ सरदार दुर्गादास की प्रभावशाली स्थिति के कारण उससे ईर्षा करने लगे थे अथवा अजीतसिंह ने व्यस्क होने पर दुर्गादास के प्रभाव और हस्तक्षेप को स्वीकार करने से इन्कार किया हो। लेकिन मनमुटाव के उपरान्त भी दुर्गादास बालक महाराजा के प्रति स्वामिभक्त बना रहा। उसने कम से तीन बार अजीतसिंह की रक्षा की थी। जब आजम के बुलाने पर अजीतसिंह अजमेर जाने के लिये तैयार हो गया था उस समय दुर्गादास ने ही उसे जाल में फँसने से रोका था। दूसरी बार अजीतसिंह को नर्मदा पार करके मुगल सम्राट बहादुरशाह के साथ दक्षिण जाने से रोका था। दुर्गादास के परामर्श पर ही अजीतसिंह और जयसिंह मंडलेश्वर के पड़ाव से स्वदेश रवाना हुए थे। साम्भर के युद्ध में दुर्गादास राठौड़ भी मौजूद था। लेकिन वह इतना अधिक स्वाभिमानी था कि मनमुटाव उत्पन्न होने के पश्चात् अजीतसिंह पर आश्रित नहीं रहा।

धीरता और साहस मे वह अद्वितीय था। लेकिन साथ ही दुर्गादास एक सफल कूटनीतिज्ञ भी था। उसने अकबर को विद्रोह के लिये उत्तेजित करके उस समय औरगजेब की शक्ति को विभाजित किया था, जब मारवाड विनाश के कगार पर था। दक्षिण भारत में रहते हुए भी वह मारवाड की गतिविधियो के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त करता रहता था। उसने जोधपुर के अमीन ईसरदास नागर का विश्वास प्राप्त करके औरगजेब के पौत्र और पौत्री को सकुशल उनके दादा के पास पहुँचाया था। परिणामस्वरूप उसे मनसब और जागीर प्राप्त हुई। मुगल बादशाह की ओर से उसे "राव" की उपाधि और तीन हजार जात व सवार का मनसब [१८८] उस समय प्राप्त हो चुका था जबकि अजीतसिह डेढ़ हजारी मनसबदार था उसके सम्बन्धियों को भी मनसब मिलता रहा।[१८९] औरगजेब उस पर इतना अधिक विश्वास करने लगा था कि विद्रोही शाहजादे अकबर को लाने के लिये उसे कन्धार तक भेजा गया था। समय-समय पर सरकारी सेवा और इनाम मिलते रहे। एक कूटनीतिज्ञ ही अपने विपक्षी का विश्वास प्राप्त कर सकता था।

दुर्गादास एक सिद्धान्तवादी व्यक्ति था। उसने लूटमार की थी। विद्रोह कि लिए राठौडो को उत्तेजित भी किया था। लेकिन जब उसे शाही विश्वास प्राप्त हुआ तो उसने अजीतसिंह को भी वतन जागीर प्रदान करने के लिये सिफारिश की थी। वह विश्वासघाती नही था। उसने अकबर की सन्तान का लालन-पालन ही नही किया था परन्तु कुरान की शिक्षा देने के लिये एक मुस्लिम स्त्री की सेवायें (अजमेर से) प्राप्त की थी। मुगलो ने उसकी हत्या करने का प्रयत्न अवश्य किया था परन्तु उसने कभी भी हत्या और षड्यन्त्र का मार्ग नही अपनाया था।

दुर्गादास का वर्णन मुगल दरबार के अखबारात मे १७१६ ई० तक पढने को मिलता है। इससे स्वर्गीय रेऊजी के इस निष्कर्ष का समर्थन होता है कि उसकी मृत्यु १७१८ ई. मे हुई होगी। उसका दाह संस्कार उज्जैन में क्षिप्रा नदी के तट पर सम्पन्न किया गया था। उसके वशज समदडी और बागावास की जागीरो का उपभोग करते थे।[१९०]

दुर्गादास राठोड का जीवन चरित्र मारवाड के इतिहास मे ही नहीं अपितु मध्यकालीन भारत के इतिहास मे प्रेरणा स्रोत के रूप मे माना जाता है। वह साहस, वीरता, त्याग, स्वामीधर्म एव देशभक्ति की भावना से ओत प्रोत था। इसलिये हम उसका स्मरण एक आदर्श पुरुष के रूप मे करते हैं।

"माई ऐडा पूत जण जेडा दुर्गादास"

२ महाराजा अजीतसिह के उत्तराधिकारी तथा समकालीन मुगल सम्राट

अजीतसिह की मृत्यु के समय अभयसिह मुगल राजधानी में था। अतएव मुगल सम्राट ने उसे जोधपुर का टीका, सात हजार का मनसब, नागौर, केकडी,

पटियाली, मारोठ और परवतसर के परगने वतन जागीर में प्रदान किये थे।[१६१] इन परगनों को १७२२ में अजीतसिंह से छीन लिया गया था। इतिहासकार इरविन लिखता है कि शम्सउद्दौला की सिफारिश पर राजराजेश्वर की उपाधि और मनसब अभयसिंह को प्रदान किया गया था।[१६२]

दिल्ली से जोधपुर सीधा पहुँचने के बजाय अभयसिंह ने सवाई जयसिंह की पुत्री के विवाह का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया था और इसलिये वह मथुरा गया जहाँ उसने १ अगस्त, १७२४ के दिन सवाई जयसिंह की पुत्री के साथ विवाह किया। अभयसिंह के इस व्यवहार से राठोड़ सरदारों में असन्तोष उत्पन्न हुआ। अजीतसिंह के छोटे पुत्रों ने भी परिस्थिति से लाभ उठाया। उत्तेजित सरदारों ने भंडारी जाति के सभी कर्मचारियों को बन्दी बना लिया। अतएव अभयसिंह विवाह के पश्चात् सवाई जयसिंह की पांच हजार घुड़सवारों की सेना लेकर जोधपुर पहुँचा था। उसने जोधपुर पहुँचने पर भंडारी रघुनाथ को मुक्त किया। लेकिन पुन. बन्दी बनाकर दीवान के पद से भी उसे हटा दिया (जनवरी १७२५) अभयसिंह के इस कार्य से यह स्पष्ट होता है कि वह सरदारों को अप्रसन्न करना नहीं चाहता था। उस समय तक इन्द्रसिंह जीवित था। वह नागोर के दुर्ग में रह रहा था। उसके छोटे भाई आनन्दसिंह और रायसिंह भी उत्पात मचा रहे थे। अतएव सरदारों को अप्रसन्न करना राजनीति नहीं थी। बख्तसिंह को भी राजाधिराज की उपाधि और नागोर देकर अभयसिंह मुगल राजधानी के लिये रवाना हो गया।[१६३]

फरवरी १७२६ मे अभयसिंह को आदेश दिया गया कि गुजरात के नये सूबेदार सरबुलन्द खां के विद्रोही हामिद खां का दमन करने मे सहायता करे।[१६४] अभयसिंह ने सम्राट की आज्ञा का पालन किया। विद्रोह का दमन करने के पश्चात् सम्भवत. वह दिल्ली लौट गया था (जून-जुलाई १७२७) १७३० ईसवी मे सरबुलन्द खां को गुजरात की सूबेदारी से पृथक् कर दिया था। उसके स्थान पर अभयसिंह को गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया गया था।[१६५] गुजरात जाते समय अभयसिंह ने अजमेर पर अपना अधिकार स्थापित किया।[१६६] अक्तूबर १७३० में कलोल के पड़ाव पर उसे मालूम पड़ा कि सरबुलन्द खां ने विद्रोह कर दिया है।[१६७] विद्रोही खान को पराजित करके अहमदाबाद पर अधिकार करने मे अभयसिंह सफल हो गया था और उसने गुजरात की राजधानी के प्रबन्ध के लिये अपने वकील भंडारी रतनसिंह को नियुक्त कर दिया, पाटन की फौजदारी बख्तसिंह को प्रदान करके वहां की सुरक्षा की भी व्यवस्था कर दी थी।[१६८] लेकिन वह बड़ौदा के पीलोजी गायकवाड के आतंक मे इतना परेशान था कि वतन जागीर की वृद्धि के लिए अपने वकील के द्वारा मुगल बादशाह मुहम्मदशाह पर

दबाव डाल रहा था। अजमेर के आसपास राजगढ़, मसूदा, खरवा और भिनाय उसकी वतन जागीर म शामिल कर दिये गये थे।[१९९] परन्तु वह सन्तुष्ट नही था। वह सुबा गुजरात मे जागीर चाहता था। मराठो के आतक से गुजरात की स्थिति शोचनीय अवस्था मे हो गई थी। वहाँ अकाल पडा हुआ था। अतएव अभयसिंह का निर्वाह होना कठिन ही गया। फिर उसे यह भी शिकायत थी कि गुजरात की सूबेदारी प्रदान करते समय जो वचन दिये गये थे और उसे आशा बधाई गई थी वे सब अपूर्ण थी।[२००] इन विषम परिस्थितियो मे अभयसिंह ने पीलोजी का दमन करने के लिए उसके विरोधी पेशवा बाजीराव प्रथम के साथ साँठ गाठ करने की कोशिश की। लेकिन बाजीराव के विरुद्ध निजाम के सम्भावित आक्रमण के कारण पेशवा, गुजरात से रवाना होकर दक्षिण लौट गया और अभयसिंह की योजना अपूर्ण रह गई।[२०१] परन्तु पिलोजी की मौत के घाट उतारकर बड़ौदा और जम्बुसर के दुर्गों पर अधिकार करने मे अभयसिंह अवश्य सफल हो गया था (मार्च २६, १७३२) अभयसिंह की इस नीति पर टिप्पणी करना आवश्यक है। यहा से मारवाड़ राठौड़ महाराजाओ के मराठो के साथ सम्बन्ध प्रारम्भ होते थे। इस समय अभयसिंह का लक्ष्य पेशवा के साथ दूरदर्शी साठ-गाठ का नही था। वह तो पीलोजी का दमन करके गुजरात मे शाति और व्यवस्था स्थापित करना चाहता था, ताकि उसकी अपूर्ण अभिलाषा पूर्ण हो जाती। वह सवाई जयसिंह के समान ऐश्वर्य और प्रतिभा की अभिवृद्धि चाहता था।[२०२] मराठो के विरुद्ध गुजरात मे मुगलो की प्रभुसत्ता को बनाये रखकर अभयसिंह उसके सासारिक गौरव में बादशाह की कृपा से अभिवृद्धि करना चाहता था। मार्च १७३२ तक वह मुगल साम्राज्य का एक स्वामिभक्त सरदार था। मुगल सम्राट के द्वारा महाराजा अभयसिंह की अतिरिक्त जागीर की प्रार्थनाओ पर कोई ध्यान नही दिया गया था अतएव अभयसिंह १७००० सैनिको को भडारी रत्नसिंह के नेतृत्व में गुजरात छोड़कर वह स्वय मारवाड़ लौट गया।[२०३] मारवाड़ पहुँचने के पश्चात् वह बख्तसिंह की ओर से बीकानेर के महाराजा सुजानसिंह के विरुद्ध युद्ध मे व्यस्त हो गया। मुगल सम्राट को अभयसिंह का गुजरात से प्रस्थान कर जाना ठीक प्रतीत नही हुआ।[२०४] १७३३-३४ मे मल्हार राव के सम्भावित आक्रमण से अजमेर और साभर की रक्षा करने के लिये अभयसिंह नवाब शम्सउद्दौला के साथ था।[२०५] प्रतिक्रियास्वरूप मल्हार राव ने १७३६ मे जोधपुर पर आक्रमण किया।

तत्पश्चात महाराजा अभयसिंह ने हुरडा मे राजपूतो के सम्मलन मे भाग लिया। इस सम्मलन मे पारस्परिक सुरक्षा और एकता के सम्बन्ध मे निर्णय लिये गये थे।

वह देवलिया गया और उसने गढ बीठली (अजमेर मे स्थित तारागढ के दुर्ग) को प्राप्त करने के लिए मुगल बादशाह से निवेदन किया था।[२०६] अर्थात् वह गुजरात नही गया। सम्भवत इसीलिये उसे गुजरात की सूबेदारी से पद मुक्त कर दिया गया था (१७३७ ई०)।[२०७] अभयसिंह की सिफारिश पर ही बादशाह ने मराठो को उत्तर भारत की राजनीति से दूर रखने के लिये चौथ देना स्वीकार किया था।[२०८]

नादिरशाह के आक्रमण (१७३९) के समय अभयसिंह ने मुगल साम्राज्य की कोई सहायता नहीं की।[२०९] विदेशी आक्रमण ने पतनोन्मुख मुगल साम्राज्य को शक्तिहीन कर दिया। उस समय अभयसिंह और सवाई जयसिंह राजस्थान में अपनी-अपनी प्रभुसत्ता का विकास करने मे जुट गये। १७४१ में अभयसिंह ने बीकानेर पर दुबारा आक्रमण किया। अभयसिंह की अनुपस्थिति में सवाई जयसिंह ने बीस हजार सैनिकों को लेकर जोधपुर पर आक्रमण कर दिया।[२१०] बख्तसिंह ने भी महाराजा से अप्रसन्न होने के कारण मेडता पर आक्रमण कर दिया और मेडता को अपने अधिकार में कर लिया।[२११] तदुपरान्त अभयसिंह ने सवाई जयसिंह और बख्तसिंह की सेना के विरुद्ध गगवाने का युद्ध लड़ा।[२१२] दोनो पक्षों के बीच मेवाड के महाराणा जगतसिंह ने संधि करवा दी। सवाई जयसिंह की मृत्यु के पश्चात् अभयसिंह ने गढ बीठली पर अधिकार किया था।[२१३]

मुगल सम्राट मुहम्मदशाह विदेशी आक्रमण से सभल भी न पाया था कि जनवरी १७४८ में अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर आक्रमण किया। उस समय अभयसिंह को भी शाही सेना की सहायता के लिए आमत्रित किया गया था। लेकिन अभयसिंह नही गया।[२१४] बख्तसिंह को सराय बादली और बाजीराबाद की सुरक्षा का कार्य सौंपा गया था।[२१५] अभयसिंह की बेरुखी के कारण अथवा गुजरात का प्रबन्ध ठीक से नहीं कर सकने के कारण मुहम्मदशाह के उत्तराधिकारी अहमदशाह ने अभयसिंह के छोटे भाई बख्तसिंह को गुजरात का सूबेदार नियुक्त कर दिया।[२१६] स्वाभाविक रूप से दोनों भाईयो के बीच मनमुटाव उग्र हो गया। मल्हार राव होल्कर ने बीच में पड़कर दोनों के बीच समझौता भी करवा दिया।[२१७] १९ जून, १७४९ के दिन अभयसिंह इस संसार से विदा हो गया।

अभयसिंह की मृत्यु के साथ मारवाड के महाराजाओ के मुगल बादशाहो के साथ सम्बन्धो का वर्णन लगभग समाप्त हो जाता है। अभयसिंह के पुत्र और उत्तराधिकारी रामसिंह के शासन काल मे उसके चाचा के विरुद्ध सघर्ष का वर्णन तारीख इ-आलमगीरी सानी मे अवश्य किया गया है।[२१८] परन्तु १७४९ के बाद मारवाड के शासकों का दिल्ली के सिंहासन पर आरूढ मुगल बादशाहों के साथ सम्बन्ध

के नाम मात्र का था। पानीपत के तृतीय संग्राम से पहले मराठों ने राजस्थान को अपने प्रभाव क्षेत्र में ले लिया था। मराठागर्दी ने राजस्थान को आन्तरिक उपद्रवों का केन्द्र स्थल बना दिया था। पानीपत के प्रथम युद्ध के साथ मारवाड़ के राठौड़ों के मुगल सम्राटों के साथ सम्बन्ध प्रारम्भ हुए थे और पानीपत के तृतीय युद्ध के साथ सम्बन्ध समाप्त हो गये। स्पष्ट है मारवाड़ राज्य के उत्थान और विकास के इतिहास में पानीपत के दोनों युद्धों का महत्त्व कम नहीं था।

१　पंचोली पांडुलिपि पृ. १५३ ब, राजरूपक पृ १८ श्लोक १८ व २१ और विनोद पृ. ८२८ सामन्तों की इच्छानुसार उदयसिंह ने रानियों को सती होने से रोका था। पंचोली पांडुलिपि में उन प्रमुख १६ सरदारों के नाम लिखित हैं। जो जसवन्तसिंह की मृत्यु के समय जमरूद थे। देखिये मारवाड़ एण्ड दी मुगल एम्परर्स पृ ११५।

२　पंचोली पांडुलिपि पृ. १५४ (अ) वाकया सरकार अजमेर वा रणथम्भोर (सीतामऊ प्रतिलिपि पृ ६०–६१) में सोजत व जैतारण की जागीर प्राप्त करने के प्रयास का वर्णन है।

३　८ जीकाद सन् २२ (५ दिसम्बर, १६७८) के वाकया लिखते समय वाकया निगार लिखता है—"चार दिन हुवे उसके (महाराजा जसवंतसिंह) मरने की खबर मिली है।' फतूहात ए आलमगीरी का लेखक इसका समर्थन करता है (देखिये फतूहात सीतामऊ प्रतिलिपि पृ ७३ ब) पंचोली पांडुलिपि के अनुसार महाराजा की मृत्यु २८ नवम्बर, १६७८ की रात के समय हुई थी। अतएव "मुआसिर ए आलमगीरी ' की इस सूचना पर विश्वास नहीं किया जा सकता कि जसवन्तसिंह की मृत्यु मंगलवार १० दिसम्बर, १६७८ के दिन हुई थी (देखिये मआसिर का अंग्रेजी अनुवाद पृ. १०६)

४　मनूची जि २, पृ. २३३

५　पंचोली पांडुलिपि पृ १६१ (अ)

६　वही

७　वाकया रणथम्भोर पांडुलिपि पृ. ७४, जोधपुर ख्यात जि १ पृ २७१

८.　अजीतसिंह की ख्यात पृ १

९.　वाकया रणथम्भोर पृ ७६–७७ इसकी पुष्टि ख्यातों से भी होती है।

१०　पंचोली पांडुलिपि पृ १६१ ब
इस समय भंडारी रघुनाथ, रूपसिंह पंचोली केसरी सिंह, मियां फरासत और जालोर के फौजदार के नाम फरमान जारी किये गये थे।

११.　मारवाड़ एण्ड दी मुगल एम्परर्स पृ ११७

१२.　वाकया रणथम्भोर पृ ७६, मआसिर ए आलमगीरी (अंग्रेजी अनुवाद) पृ १०९ पंचोली पांडुलिपि पृ. १६१ (ब), बांकीदास ख्यात पृ ३६ अजितोदय, सर्ग ५, श्लोक ३४–४३ तथा वीर विनोद पृ ८२८

१३　मआसिर ए आलमगीरी (अंग्रेजी अनुवाद) पृ १०७
इसकी चर्चा पंचोली पांडुलिपि और ख्यातों में भी पायी जाती है।

१४　पंचोली पांडुलिपि पृ. १६६ (ब) फतूहात ए आलमगीरी पृ ७४ (अ) मआसिर ए आलमगीरी पृ १०७, जोधपुर ख्यात जि १ पृ २७७

१५. सरकार, हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब जि. ३ पृ ३३८, रेऊ जि. १ पृ. २५०
१६. पंचोली पाडुलिपि पृ. १६२ (ब)
१७. खाफी खां (अंग्रेजी अनुवाद) इलियट और डाउसन जि. ७ पृ. २९७
१८. पंचोली पाडुलिपि के अनुसार नियाज खां के द्वारा मीर खां को बीस हजार रुपया देने के पश्चात् अटक पार करने में सफलता प्राप्त की थी (देखिये पंचोली पाडुलिपि पृ. १६२ (ब) और जोधपुर ख्यात जि. १ पृ. २८३)
१९. पंचोली पांडुलिपि पृ. १६६ (अ)
२०. जोधपुर ख्यात जि. २ पृ. १६, राजरूपक श्लोक ११ पृ. २६, फतूहात-ए-आलमगीरी पृ. ७१ (ब) और वीरविनोद पृ. ८२८
२१ पंचोली पाडुलिपि पृ. १६६ (अ), राजरूपक श्लोक ५ पृ. २४–२५ तथा मारवाड़ एण्ड दी मुगल एम्परर्स पृ. ११९–२० पाद टिप्पणी ५
२२. फतूहात-ए-आलमगीरी पृ. ७३ (ब) पंचोली पाडुलिपि पृ. १६६ (ब)
२३. मआसिर-ए-आलमगीरी पृ. १०७, सरकार जि. ३ पृ. ३२७–३२८
२४. अजितोदय, सर्ग ६, श्लोक ४६, ५१, ५२, अजीतसिंह की ख्यात पृ. ४ पंचोली पाडुलिपि (पृ. १७१ ब) के अनुसार फलोदी, पोकरण, सिवाना और सांचोर में थाने स्थापित किये गये थे।
२५. भीमसेन जि. १ पृ. १६४, पंचोली पृ. १६६ (अ), मआसिर-ए-आलमगीरी (अंग्रेजी अनुवाद) पृ. १०६
२६. पंचोली पृ १७२ (ब), अजितोदय सर्ग ६ श्लोक २८–२७, राजरूपक पृ. २७ श्लोक १५ और जोधपुर ख्यात जि. २ पृ. २२
२७. मआसिर-ए-आलमगीरी पृ. १०६, फतूहात-ए-आलमगीरी पृ. ७५ (अ) जोधपुर ख्यात जि. २ पृ. ४५
२८. मुरक्का-ए-दिलकशा (सीतामऊ प्रतिलिपि) जि. १ पृ. १६४
२९. फतूहात–ए–आलमगीरी पृ. ७५ (ब)
३०. पंचोली पाडुलिपि पृ. १७४ (अ), जोधपुर ख्यात जि. २ पृ २३
३१. वाकया रणथम्भौर पृ. २१७
३२. जोधपुर ख्यात जि २ पृ. २३–२४
३३. मारवाड़ एंड दी मुगल एम्परर्स पृ. १२१
३४. फतूहात–ए–आलमगीरी पृ. ७४ (ब)
३५. मआसिर–ए–आलमगीरी (अंग्रेजी अनुवाद) पृ. १०६, फतूहात–ए–आलमगीरी पृ. ७४ (ब), भीमसेन जि. १ पृ. १६५, राजरूपक पृ. २६, श्लोक २६, अजितोदय, सर्ग ६ श्लोक १–७ और वीर विनोद पृ. ८२८–२९ अजमेर के वाकयात को पढ़ने से जाहिर होता है कि इन्दरसिंह ने जोधपुर का टीका प्राप्त करने के लिये स्वयं आवेदन-पत्र प्रस्तुत किया था और बीस लाख रुपये की पेशकश देना भी स्वीकार किया था (देखिये ८ जीकाद सन् २२ तदनुसार ५ दिसम्बर १६७८ के वाकयात सरकार अजमेर, रणथम्भौर में पृ. १११) इसी समय अनूपसिंह ने जोधपुर का टीका मिलने के एवज में पच्चीस लाख रुपये की पेशकश देना स्वीकार किया था। अनूपसिंह नागौर अथवा जालोर की वतन जागीर के लिये भी उत्सुक था। इन परिस्थितियों में पेशकश की रकम छत्तीस लाख रुपया निर्धारित की गई होगी और इन्दरसिंह को जोधपुर का टीका प्रदान किया गया। ईसरदास लिखता है—"राजपूतों ने पर–

पर अपनी सरदारी के घमन्ड से बेसुध होकर कितना फिसाद फैला रखा है। इसीलिये राजगी का खिताब और टीका इन्दरसिंह को दिया गया था।"

३६. मारवाड एंड दी मुगल एम्परर्स पृ. १२२
३७ अजितोदय सर्ग ६ पृ. ६१–६३, राजरूपक श्लोक २२–२३ पृ. २८–२६
३८. फतूहात-ए-आलमगीरी पृ. ७५ (ब)
३९. डॉ० सतरजनी राठोडों के सघर्ष को विद्रोह (Rebellion) कहकर पुकारते हैं। वाकया सरकार अजमेर वा रणथम्भोर की व्याख्या करते हुए डॉ० अली ने अपने शोध-प्रबन्ध मे Nobility under Aurangzeb मे इसे विद्रोह कहकर ही पुकारा है।
४०. मारवाड एंड दी मुगल एम्परर्स पृ. १२२
४१ वही
४२. फतूहात-ए-आलमगीरी पृ ७२ (ब)
४३. अजितोदय सर्ग ६ पृ. ६१-६३, अजितग्रन्थ श्लोक १३८६–६७ वाकया सरकार अजमेर वा रणथम्भोर पृ. ५५०–५४
४४. मारवाड एंड दी मुगल एम्परर्स पृ. १२४
४५. मआसिर-ए-आलमगीरी पृ. ११०, खाफी खा (इलिएट और डाउसन) जि ७ पृ २६८

४५ (ए) खाफी खा के वर्णन के आधार पर यह स्वीकार किया जाता है कि जसवन्तसिंह का एक पुत्र दलथम्भण मृत्यु को प्राप्त हो गया था। स्वर्गीय महाराजा की विधवा रानियाँ (जादमन और नरूकी) को जब पुरुषों की वेशभूषा में भी रक्षा करना सम्भव प्रतीत नहीं हुआ, तो वे दोनों अपनी रक्षा करते हुए मारी गई अथवा राठोडों ने उन्हें मौत के घाट उतार कर अजीतसिंह के साथ मारवाड का रास्ता लिया।

लेकिन वाकया सरकार अजमेर वा रणथम्भोर को पढ़ने से पता चलता है कि दलथम्भण की मृत्यु नही हुई थी। रानी नरूकी का वह पुत्र भाग-दौड में औरंगजेब के सिपाहियो के हाथ लग गया था (देखिये सीतामऊ प्रतिलिपि का पृ. ३१८–३१६) और दोनो रानियां जीवित मारवाड पहुँची थीं (देखिये उक्त पाडुलिपि का पृ. ५५३) इस प्रकार मुहम्मदी राज को नकली राजकुमार मानना भ्रान्तिमूलक होगा।

४६. अजितोदय सर्ग ७ पृ ४–७, अजित ग्रन्थ श्लोक १३३१, जोधपुर ख्यात जि. २ पृ. ४४, वीरविनोद पृ. ८३०
४७. फतूहात-ए-आलमगीरी पृ. ७७ (अ)
४८. वीर विनोद पृ ८३०
४९. वाकया सरकार अजमेर वा रणथम्भोर का लेखक भी लिखता है—"दुर्गादास राणा के बुलाने पर वहां गया तो राणा ने इसको तसल्ली दी कि तुम किस लिये हमसे जुदा होते हो। आखिर तुम्हारा मकसद यही है कि राजा के लड़के को जोधपुर का राजतिलक हो तो हम भी यही चाहते हैं। तुम और हम मिलकर ऐसा कितना फिसाद फैलायें कि बादशाह मजबूर हो जाय" (सीतामऊ प्रतिलिपि का पृ. ५४७) इससे पहले राणा ने सोग (सोनिग) और दुर्गादास के पास खिलअतें भिजवाई और उनको तसल्ली (दिलासा) देकर अपने पास बुलाया है (उक्त पाडुलिपि का पृ. ५२७)

इसके बाद वाकया निगार लिखता है—"दुर्गादास ने राणा अकहर से सुलाव (मेलजोल) बढ़ा लिया है ...... राणा ने पैसे से मदद करनी चाही......(उक्त पाडुलिपि का पृ. ५६३)

इससे यह स्पष्ट होता है कि राणा राजसिंह मारवाड़ के राठौड़ों को संकटकाल में सहायता करके उसके प्रभुत्व और शक्ति का विकास करना चाहता था।

४०. फतूहात-ए-आलमगीरी पृ. ७५ (ब)
४१. मारवाड़ एण्ड दी मुगल एम्परर्स पृ. १२१-२२, १२६ पाद टिप्पणी ६
४२ वाकया सरकार अजमेर वा रणथम्भोर पृ ३३२
४३. अजितोदय सर्ग ८ श्लोक ३०-३२, अजीतसिंह की ख्यात (पाडुलिपि) पृ ३८
४४ मआसिर-ए-आलमगीरी (अंग्रेजी अनुवाद) पृ ११९ जोधपुर ख्यात जि. २ पृ. ५ यह अन्तिम युद्ध था। इसके बाद छापेमार (गुरिल्ला) युद्ध-नीति का अनुसरण किया गया था।
४५ फतूहात-आलमगीरी पृ. ७७ (अ)
४६. मआसिर-ए-आलमगीरी (अंग्रेजी अनुवाद) पृ ११२ व ११६
४७. जोधपुर ख्यात जि. १ पृ २७, राजविलास पृ. १३०-३४ (ब)
४८. मारवाड़ एण्ड दी मुगल एम्परर्स पृ १२८
४९. डॉ० गोपीनाथ शर्मा कृत, मेवाड़ एण्ड दी मुगल एम्परर्स (प्रथम संस्करण) पृ १६६
६० मआसिर-ए-आलमगीरी (अंग्रेजी अनुवाद) पृ. ११७
६१ जोधपुर ख्यात जि २ पृ. ५६
६२ जयपुर अखबारात (सीतामऊ प्रतिलिपि) २३ जलूसी साल के जि ४ पृ. ८६-९० इसकी पुष्टि जोधपुर ख्यात (जि. २ पृ २७) व अजीत ग्रन्थ श्लोक ४८६-८७ से भी होती है।
६३. जोधपुर ख्यात जि. २ पृ. २८-५६ राजरूपक (पृ. ६१ श्लोक ३६) के अनुसार खेतासार के युद्ध में ११ जून १६८० के दिन राठौड़ों ने इन्द्रसिंह को पराजित किया था।
६४. अजीतसिंह की ख्यात (पांडुलिपि पृ. ९) अजित ग्रन्थ श्लोक ४७०-७४
६५ जब दुर्गादास ने जोधपुर पर आक्रमण करने का विचार किया तो जोधपुर की रक्षा के लिये औरंगजेब ने नवाब मुकरम खां के नेतृत्व में एक शक्तिशाली सेना रवाना की थी। देखिये मारवाड़ एण्ड दी मुगल एम्परर्स पृ १२६
६६ मआसिर-ए-आलमगीरी (अंग्रेजी) पृ. १२१
६७ सरकार, हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब जि ३ पृ ३४७
६८ मआसिर-ए-आलमगीरी पृ ११६
६९. जदुनाथ सरकार जि. ३ पृ. ३४८
७० फतूहात-ए-आलमगीरी पृ ७७ (अ) व ७८ (ब), राजरूपक पृ. ६२ व ९० श्लोक १ से ११४
७१. मारवाड़ एंड दी मुगल एम्परर्स पृ. १३०
७२ मआसिर-ए-आलमगीरी पृ. १२२-२३
७३ वाकया सरकार, अजमेर वा रणथम्भोर पृ. ६०५
७४. फतूहात-ए-आलमगीरी पृ ७८ (ब), राजरूपक पृ ९-१० नाडोल का युद्ध ५ सितम्बर १६८० के दिन लड़ा गया था।
७५ मारवाड़ एण्ड दी मुगल एम्परर्स पृ १३१
साजत के बोहरों ने चार हजार रुपया देकर जान और माल की सुरक्षा की थी।
७६ वाकया सरकार अजमेर व रणथम्भोर पृ. २४५
७७ अखबारात २३ जलूसी सन भाग २ पृ. २३९-४० (सीतामऊ)
७८ मारवाड़ एण्ड दी मुगल एम्परर्स पृ. १३१

७९ फ़तूहात-ए-आलमगीरी पृ. ८० (ब) जोधपुर ख्यात जि. २ पृ. ६९

८०. राठौडों ने नाकाबन्दी करदी थी, जिससे औरंगजेब के पास अकबर के राजतिलक की सूचना नही पहुँच सके (मारवाड एड दी मुगल एम्परर्स पृ. १३२) लेकिन मुहतसिम खा और मुहम्मद नईमखा किसी प्रकार अकबर से पृथक् होकर औरगजेब की सेवा मे पहुँच गये (फ़तूहात-ए-आलमगीरी पाडुलिपि पृ. ८१ अ) उनके द्वारा ही बादशाह को सब हाल १४ जनवरी को प्राप्त हुआ (देखिये अखबारात २४ जलूसी सन माग १ पृ. २४४-४५)

८१. मआसिर-ए आलमगीरी के अनुसार औरगजेब ने ६ अप्रेल १६८१ के दिन मुहम्मदी राज को स्वर्गीय महाराजा के औरस पुत्र के रूप में स्वीकार किया था (अग्रेजी अनुवाद पृ. १२७)

८२ ईसरदास नागर, फ़तूहात-ए-आलमगीरी पृ. ८१ (ब)

८२ (अ) उक्त

८३. उक्त पृ. ८१ अ

८४. उक्त पृ. ८२ (अ)

८५. अजीतग्रन्थ, श्लोक २४४-७८, ईसरदास, पृ. ८२, खाफी खा, जि. ७, पृ ३०२-४

८६. मारवाड एड दी मुगल एम्परर्स पृ. १३२-३३

८७. मारवाड एड दी मुगल एम्परस (प्रथम सस्करण) पृ. १७६
मारवाड एड दी मुगल एम्परर्स पृ. १३४

८८. फ़तूहात-ए-आलमगीरी पृ. ८३ (ब), मआसिर-ए-आलमगीरी (अग्रेजी अनुवाद) पृ. १२७ व १३१

८९. एलफिंस्टन पृ ६२७, सरकार, हिस्ट्री ऑफ औरगजेब जि. ३ पृ. २१७-१८, मेवाड एड दी मुगल एम्परर्स पृ. १८०-८१

९०. अखबारात दिनाक १३ जुलाई १६८१ (सीतामऊ प्रतिलिपि) पृ. १

९१. उक्त

९२ उक्त दि २२ सितम्बर १६८१

९३. उक्त दि १३ नवम्बर, १९ नवम्बर १६८१ जोधपुर ख्यात जि. २ पृ ६८

९४. फ़तूहात-ए-आलमगीरी पृ. ८५ (अ), मआसिर-ए-आलमगीरी पृ. १३२

९५. मआसिर-ए-आलमगीरी पृ. १३३, जोधपुर ख्यात जि २ पृ. ६६

९६ मारवाड एड दी मुगल एम्परर्स पृ १३६

९७. जोधपुर ख्यात जि. २ पृ. ६९-७०

९८. अजितोदय सर्ग ११ श्लोक ४६-५२ एव सर्ग १२ का श्लोक २ से ७

९९. भानना, सिवाना से तीन मील की दूरी पर स्थित है।
मआसिर-ए-आलमगीरी पृ. १६६, जोधपुर ख्यात जि २ पृ. ६९-७०

१००. डॉ. अतरअली का निबन्ध जो इंडियन हिस्ट्री काग्रेस के दिल्ली अधिवेशन में पढ़ा गया था तथा उनका शोध-प्रबन्ध Nobility under Aurangzeb

१०१. मारवाड एंड दी मुगल एम्परर्स पृ १३६

१०२. फ़तूहात-ए-आलमगीरी पृ. १२१ (अ) अखबारात दि. १ अक्तूबर १६८८ पृ. ३२

१०३. जोधपुर ख्यात जि. २ पृ ८४

१०४. अजित ग्रन्थ श्लोक १२४८-१२५२

१०५. मिरात-ए-अहमदी जि. १ पृ. ३१८ अखबारात दि. ७ अप्रेल १६८८

१०६. मिरात-ए-अहमदी जि. १ पृ. ३१८, अखबारात दिनांक ८ व ११ अप्रेल १६८८ पृ. ३०

१०७ मिरात जि १ पृ ३२६, बोम्बे गजेटियर जि. १ पृ. २८९
१०८. जोधपुर ख्यात जि. २ पृ. ९०-९१
१०९. अखबारात दि. २७ मई १६८५ पृ. ४६८
११०. मिरात-ए-अहमदी जि. १ पृ. ३२५, मारवाड एंड दी मुगल एम्परर्स पृ. १३९
१११. फतूहात-ए-आलमगिरी पृ. १६७ (अ)
११२. उक्त
११३. मिरात-ए-अहमदी जि. १ पृ. ३३२-३३, तारीख-ए-पालनपुर जि. १ पृ. १३८
११४. फतूहात-ए-आलमगिरी पृ. १६८ (ब), मआसिर-ए-आलमगीरी पृ. २४० मिरात-ए-अहमदी जि. १ पृ. ३४६
११५. मिरात-ए-अहमदी जि. १ पृ ३४१, तारीख-ए-पालनपुर जि. १ पृ. १३९ अखबारात दि. २६ अगस्त १६९९ पृ १३३
११६. फरमान, अखबारात दि. ७ मई १६९९ पृ. ९८-९९
११७. अखबारात दिनांक ११ नवम्बर १७०० पृ. २५४-५५
११८. अहकाम-ए-आलमगिरी (छोतामक प्रतिलिपि) जि १ पृ ४ (ब) मिरात-ए-अहमदी जि. १ पृ. ३४८

ऐसा प्रतीत होता है कि दुर्गादास के चौपायों के लिये दो वर्ष की माफी दी गई थी। सम्भवत यह अतिरिक्त बख्शीस थी जो अकाल के समय राहत के रूप मे प्रदान की गई होगी। लेकिन जब माफी की अवधि समाप्त हुई तो दुर्गादास ने उसके साथियों को पुनः उत्तेजित किया होगा। अतएव बादशाह ने उसे बंदी बनाने अथवा उसकी जीवन-लीला समाप्त करने के आदेश गुजरात के नये सूबेदार आजम के नाम भिजवाये होंगे। देखिये इनायतउल्ला कृत अहकाम-ए-आलमगिरी पृ. ३ (ब)

११९. मिरात-ए-अहमदी जि. १ पृ. ३४८, जोधपुर ख्यात जि. २ पृ. ९८
१२०. अखबारात दि. ६ दिसम्बर १७०२ व २४ मार्च १७०३ मआसिर-ए-आलमगिरी
१२१. मनूची जि. २ पृ. २४०
१२२. मनूची जि.
१२३. मारवाड एंड दी मुगल एम्परर्स पृ. १४३-४४ पाद टिप्पणियां
१२४. उक्त पृ १४४
१२५. अजितोदय सर्ग १७ श्लोक ११, राजरूपक पृ. १४, मिरात-ए-अहमदी जि. १ पृ. ३७७, टॉड जि. २ पृ. १०१२
१२६. आजम के फरमान जो पुरालेखागार बीकानेर में सुरक्षित होने चाहिये।
१२७. जोधपुर ख्यात जि. २ पृ. ११२-१३, टॉड जि. २ पृ. १०१२
१२८. खाफी खां (इलियट और डाउसन) जि. ७ पृ. ४०४, राजरूपक पृ. ३४
१२९. मारवाड एंड दी मुगल एम्परर्स पृ. १४५
१३०. बहादुरशाह नामा, अखबारात दि. १३ जनवरी १७०८ पृ. ३७६ अजितोदय, सर्ग १७, श्लोक ३३
१३१. जोधपुर ख्यात जि. २ पृ. ११७ बहादुरशाह
१३२. अखबारात दि. जनवरी १७०८, जोधपुर ख्यात जि. २ पृ. ११७
१३३. जोधपुर ख्यात जि २ पृ. ११८, इर्विन लेटर मुगल्स १. पृ. ४७
१३४. अखबारात पृ. ४४३

१३५ उक्त पृ ४२३

१३६ खाफी खाँ (इलियट और डाउसन) जि ७ पृ ४०५ इर्विन जि १ पृ ४८

१३७ जोधपुर ख्यात जि २ पृ १२१, राजरूपक पृ ३५

१३८ जोधपुर ख्यात जि २ पृ १२१, अखबारात पृ ३ वीरविनोद पृ ८३६ भीमसेन और मासिर उल उमरा के अनुसार इस समय ३००० जात व सवार का मनसब दिया गया था। लेकिन जोधपुर ख्यात के अनुसार ३५०० जात ४०० सवार का मनसब दिया गया था।

१३९ जोधपुर ख्यात जि २ पृ १२६

इस समय दक्षिण मे कामबक्श ने विद्रोह कर दिया था। उसका दमन करना बहादुरशाह के लिये आवश्यक था। उत्तर भारत से अनुपस्थिति के समय राजपूत राजा सगठित होकर मुगल सम्राट के विरुद्ध विद्रोह कर सकते थे। अतएव बहादुरशाह ने अजीतसिंह को जोधपुर प्रदान करना राजनैतिक दृष्टि से उचित नहा समझा होगा।

१४० अखबारात दिनाक २५ फरवरी १७०८ पृ २३, इर्विन जि १ पृ ६७

१४१ जोधपुर ख्यात जि २ पृ १२७ २८, इर्विन जि १ पृ ६७ अखबारात मे मडलेश्वर का वर्णन नहीं है। डा रघुवीरसिंह सातामऊ ने भी एक अनुसधान लेख मे लिखा है कि मडलेश्वर के पडाव से राजपूत राजा लौट गये थे। लेकिन जोधपुर ख्यात पर आधारित अपने पूर्व निर्णय को बदलना मैंने ठीक नहा समझा।

१४२ *मारवाड एड दी मुगल एम्परस पृ १४१*

१४३ सामर का युद्ध सितम्बर १७०८ में लडा गया था। इस युद्ध का समकालीन वर्णन सामरयुद्ध नामक हस्तलिखित ग्रन्थ म समकालीन कवि कलानिधि ने किया था। इस ग्रन्थ की पाडुलिपि अमेरिका की हारवर्ड विश्वविद्यालय म सुरक्षित है। पाडुलिपि का नम्बर ६००४ है।

१४४ अजितोदय सर्ग १८ और १९ श्लोक १–६ १७ १८ और ९९–१०६ वीरविनोद पृ ८३७

१४५ अखबारात पृ ११०, ८६ १११–१२ और ११८ फरमानन ३, जोधपुर ख्यात जि २ पृ १४२–४४, टाड जि २ पृ १०१४–१५

१४६ अखबारात पृ ४०६, मारवाड एड दी मुगल एम्परर्स पृ १५१ रोजनामाचा पृ ८ (अ), इर्विन जि १ पृ १३५

१४७ कानूनगो हिस्टोरीकल एसेज पृ ६० डॉ सतीशचन्द्र पृ ७४ जयपुर रिकोर्डस जि २ पृ २१ (सीतामऊ प्रतिलिपि जोधपुर ख्यात जि २ पृ १५६

१४८ जोधपुर ख्यात जि २ पृ १५६ डा सतीशचन्द्र पृ ८५

१४९ इर्विन जि १ पृ २४४

१५० डा सतीशचन्द्र पृ ८५

१५१ मारवाड एण्ड दी मुगल एम्परस पृ १५४

१५२ उक्त

१५३ खाफी खाँ (इलियट और डाउसन) जि ७ पृ ४४६ ४७, सियार–उल मुताखरीन जि १ पृ ६७ (अग्रेजी अनुवाद) इर्विन जि १ पृ २८५

१५४ जोधपुर ख्यात जि २, पृ १४७–४८, वीर विनोद पृ ८४१ टॉड जि २ पृ १०२०

१५५ अजितोदय सर्ग २० श्लोक ३६–३९

१५६ मुनव्वर–ए–कलाम पृ ४ (अ), खाफी खाँ ६ और डा जि ७ पृ ४३७

१५७. रोजनामचा पृ. १२४, खाफी खाँ इ और डा जि. ७ पृ. ४४६–४७ मआसिर-उल-उमरा जि. १ पृ. १७४, वीरविनोद पृ. ८४१, इर्विन जि. १ पृ. २८८–९०, डॉ. सतीशचन्द्र पृ १०१–२

१५८. उक्त

१५९. मारवाड़ एंड दी मुगल एम्परस पृ. १५५

१६०. रोजनामचा पृ. १२४, इर्विन जि. १ पृ- २९०

१६१. मिर्जा मुहम्मद कृत इबरतनामा पृ. ६० (ब)

१६२ देखिये परिशिष्ट ६, मारवाड़ एंड दी मुगल एम्परर्स पृ. १६३–६४

१६३. मारवाड़ एंड दी मुगल एम्परर्स पृ. १५७

१६४. बाँकीदास ख्यात पृ. ३८, राजरूपक पृ. ३९–४०

१६५. फरमान न. ७ पुरालेखागार बीकानेर मे सुरक्षित होना चाहिए।

१६६. इर्विन तो लिखता है कि वजीर कुतुब-उल-मुल्क की प्रार्थना पर बीकानेर में अजीतसिंह की जागीर मे शामिल कर दिया गया था। इर्विन जि. १ पृ. ३५१

१६७. अखबारात दिनाक २१ अगस्त, १७१८, इर्विन जि. १ पृ. ३६४ रोजनामचा पृ. २०३, मारवाड़ एंड दी मुगल एम्परर्स पृ. १५८–५९

१६८. रोजनामचा पृ. २४०–४६, खाफी खाँ (इलियट और डाउसन) जि. ७ पृ. ४७५, अजीतसिंह का शिकदार दयालदास के नाम पत्र, जोधपुर ख्यात जि. २ पृ. १७२–७४, सूरजप्रकाश पृ. १३२

इर्विन लिखता है कि एक हाथ नवाब ने और दूसरा हाथ अजीतसिंह ने पकड़ कर उसे रत्नजड़ित मयूर सिंहासन पर बैठा दिया (देखिये इर्विन जि. १ पृ. ३८९)

१६९ अजीतसिंह का शिकदार दयालदास के नाम लिखे गये पत्र के आधार पर। पत्र स्वर्गीय पंडित रेऊ ने ग्लोरीज ऑफ मारवाड़ नामक पुस्तक में पृ. ११५–१७ पर प्रकाशित करा दिया है।

१७०. देखिये महाराणा संग्रामसिंह का महाराजा अजीतसिंह के नाम पत्र। उपरोक्त पुस्तक में प्रकाशित है।

१७१ खाफी खाँ (इलियट और डाउसन) जि. ७ पृ. ४८३, वीरविनोद पृ. ८४२

१७२. खाफी खाँ जि. ७ पृ. ४८४, राजरूपक पृ. ४४, इर्विन जि. १ पृ. ४०८–१३

१७३. बालमुकन्द नामा पत्र न. १२, जोधपुर ख्यात जि. २ पृ. १७५

१७४ बालमुकन्द नामा पत्र न. २१ दिनाक १० दिसम्बर, १७१९

१७५. सैय्यद भाइयों ने रफीउद्दौला को २७ मई, १७१९ के दिन सिंहासन पर बैठाया था (इर्विन जि. १ पृ. ४२०)

१७६ मारवाड़ एंड दी मुगल एम्परर्स पृ. १६२

१७७ बालमुकन्द नामा पत्र न १२, जोधपुर ख्यात जि. २ पृ. १७५

१७८. अजायब–एल–अफाक पृ. ५६ (ब) व ५७ (अ) पत्र न १३० लेखक इनायत कम्बू लाहौरी था।

१७९. सियार उल मुताखरीन (अंग्रेजी अनुवाद) जि. १ पृ. २२८–३१ मुनव्वार–ए–कलाम, पृ ७७, जोधपुर ख्यात जि. २ पृ. १७८–७९ डॉ. सतीशचन्द्र के अनुसार अजीतसिंह को मई, १७२१ में उसके पद से मुक्त किया गया था।

१८०. इर्विन जि. २ पृ. १११–१२, रेऊ, मारवाड़ का इतिहास जि १ पृ. ३२४

१८१ राजरूपक पृ ४७ जोधपुर ख्यात जि २ पृ १८१, इर्विन जि २ पृ ११४, सतीशचन्द्र पृ १८१

१८२ मासिर-एल-उमरा (अंग्रेजी अनुवाद) जि १ पृ १७५, जोधपुर ख्यात जि २ पृ १८३, राजरूपक पृ ४८, वीरविनोद पृ ८४२, इर्विन जि २ पृ ११६-११७

१८३ जोधपुर ख्यात के अनुसार अजीतसिंह के द्वितीय पुत्र बख्तसिंह का जन्म भाद्र बदी ८ वि स १७६३ (तदानुसार २० अगस्त १७०६ ई) के दिन हुआ था। अतएव अजीतसिंह की हत्या के समय उसकी आयु १८ वर्ष की थी। बख्तसिंह के एक मात्र पुत्र विजयसिंह का जन्म ६ नवम्बर १७२६ के दिन हुआ था। जोधपुर ख्यात के अनुसार उसकी पांच रानियाँ सती हुई था। इस वर्णन से यह अनुमान लगाना कठिन है कि बख्तसिंह का पहला विवाह कब हुआ था और विवाह के समय उसकी पत्नी की क्या आयु थी? जबतक नवीन सामग्री प्रकाश में नहीं आती तबतक कामवार के वर्णन को अस्वीकार करना कठिन है।

१८४. जोधपुर ख्यात जि २ पृ १८२

१८५ मारवाड़ एंड दी मुगल एम्परस में उद्धृत तारीख-ए-मुजफ्फरी

१८६ जोधपुर ख्यात जि २ पृ १८२, मारवाड़ एंड दी मुगल एम्परस पृ १६१ पाद टिप्पणी-१

१८७ ख्यातों में उसका नाम दुर्जनदास लिखा मिलता है जबकि फारसी की तवारीखों और अखबारात में उसे दुर्गादास लिखा गया है।

का फरमान दिनांक २ मई, १७१२, राठौड़ दुर्गादास लेखक-स्वर्गीय पंडित रेऊ पृ ४८-४९

१८८ दुर्गादास के भानजे फतहसिंह को १० अप्रैल १६८० के दिन २५० जात ४० सवार का मनसब दिया गया था। (जयपुर अखबारात सीतामऊ प्रतिलिपि पृ १७६) ४ सितम्बर, १६८० के दिन दुर्गादास के भाई रघुनाथसिंह को चार बीसी जात व दस सवार का मनसब दिया गया था (उक्त अखबारात प २१५)

१९० स्वर्गीय रेऊ जी कृत राठौड़ दुर्गादास

१९१ जोधपुर ख्यात जि २ पृ १८३

१९२ अभयविलास सग ६ श्लोक ११-१२, टाड जि २ पृ १०३५

१९३ अभयविलास सग ७ श्लोक ४-३३ राजरूपक पृ ४६-५०, जोधपुर ख्यात जि २ पृ २००-२०२, वीरविनोद पृ ८४३-४४

१९४ मुगल सम्राट मुहम्मदशाह का फरमान दिनांक १६ फरवरी १७२६ जोधपुर ख्यात जि २ पृ ३१३-१४

१९५ राजरूपक पृ ५०-५१, बोम्बे गजेटियर जि १ भाग १, पृ ३१०, वीरविनोद पृ ८४४

१९६ इर्विन भाग २ पृ २०५ रेऊ, मारवाड़ का इतिहास जि १ पृ ३३६

१९७ अभयसिंह का पत्र, प्रोसीडिंग्स आफ इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस (१९४४) में प्रकाशित पृ ३७८-८०

१९८ बोम्बे गजेटियर भाग १ खंड १ पृ ३१२

१९९ मारवाड़ एंड दी मुगल एम्परस पृ १६६

२०० अभयसिंह के दो पत्र दिनांक २६ मार्च, १७३२ और १७ जुलाई, १७३२। पहला पत्र प्रोसीडिंग्ज आफ इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस (१९३६) में पृ ३०१ पर तथा दूसरा पत्र ग्लोरीज एंड दी ग्लोरियस राठौड़स (पृ, १७४-७५) पर प्रकाशित है।

२०१ महाराजा अभयसिंह का पत्र दिनांक १० अप्रैल १७३० (ग्लोरीज एंड दी ग्लोरियस राठौड्स पृ १५४६–४७ पर प्रकाशित) मारवाड एंड दी मुगल एम्परर्स पृ. १६६ तथा पाद टिप्पणी नं ४

२०२ सवाई जयसिंह मराठों का विरोध करके तथा उत्तर भारत में उनके आगमन को रोके रखने के कारण मुगल साम्राज्य में प्रतिष्ठा अर्जित कर चुका था। अभयसिंह भी सवाई जयसिंह के समान नाम कमाना चाहता था।

२०३ अभयसिंह का पत्र दिनांक १ मई, १७३२ (ग्लोरीज एंड दी ग्लोरियस राठौड्स पृ १७६ ७७ पर प्रकाशित)

२०४ ३ मार्च १७३३ का पत्र हिस्टोरिकल रिकार्ड्स कमीशन की जिल्द २० पर प्रकाशित

२०५ जोधपुर ख्यात जि २ पृ २३५, इबिल जि २ पृ २८१, रेऊ मारवाड़ का इतिहास जि १ पृ ३४८–४६

२०६ जोधपुर ख्यात जि २ पृ १४४

२०७ उक्त मिरात-ए अहमदी (जि २ पृ १६४) के अनुसार अभयसिंह के नायब भंडारी रतनसिंह ने गुजरात के लोगों पर भारी जुल्म किये थे। इन जुल्मों के कारण महाराजा का समर्थक अमीर उल उमरा भी उससे अप्रसन्न हो गया था।

२०८ रेऊ मारवाड़ का इतिहास, भाग १ पृ ३४६

२०९ मारवाड एंड दी मुगल एम्परर्स पृ १७१

२१० जोधपुर ख्यात जि २ पृ २३६ वीरविनोद पृ. ८४१

२११ जोधपुर ख्यात जि २ पृ २३८–४४, वीरविनोद पृ ४८

२१२ रेऊ मारवाड़ का इतिहास भाग १ पृ ३५२–५४

२१३ जोधपुर ख्यात जि २ पृ २५८, बाकीदास ख्यात पृ ४० वीरविनोद ८४८ ४६

२१४ स्वर्गीय रेऊजी ने (मारवाड़ का इतिहास जि १ पृ ३५६) लिखा है कि अभयसिंह ने सरहिन्द के युद्ध में अहमदशाह का मुकाबला किया था। उसके प्रयत्न से ही मुहम्मदशाह का लाहौर पर अधिकार स्थापित हुआ था।

२१५ अहमदशाह दुर्रानी लेखक डॉ गण्डासिंह पृ ५६ जोधपुर ख्यात जि २ पृ २६१

२१६ मिरात ए-अहमदी जि २ पृ ३७ ३६

२१७ रेऊ, मारवाड़ का इतिहास भाग १ पृ ३२६

२१८ मुहम्मद अलीमुद्दौला कृत तारीख ए-आलमगीरी पृ ३७–३८ (ब्रिटिश म्यूजियम ओरियन्टल नं० १७४६ सीतामऊ प्रतिलिपि)

चन्द्रसेन और जसवन्तसिंह के ज्येष्ठ भ्राता अमरसिंह राठौड तथा उन
के सम्बन्ध मे जानकारी ख्यातो वशावलियों और अन्य साहित्यिक
मिलती। इससे यही निष्कर्ष निकाला जायेगा कि समकालीन कवि
दरबारी साहित्यकार होने के नाते रचना करते समय निष्पक्ष
नही लेते थे। बीकानेर के इतिहास मे दलपत, मेवाड के
और आमेर के इतिहास मे भगवानदास के सम्बन्ध मे भी तो
मिलती। तात्पर्य यह है कि मारवाड के नहीं अपितु
समूचे साहित्यकार सरक्षक की इच्छा के प्रतिकूल अवांछनीय
और कृतित्व का बखान करने में अभ्यस्त नहीं थे। प्रस्तुत ग्रन्थ में
विभूतियों पर प्रसगवश प्रकाश डाला गया है।

शताब्दियो के सम्पर्क के कारण मारवाड मे
सस्कृति का प्रारम्भ हुआ था। मालदेव के शासनकाल मे
पुस्तकालयाध्यक्ष मुल्ला सुर्रा मारवाड के शासक की सेवा
के पुत्र मोटा राजा उदयसिंह ने काजी फिरोज को जोधपुर
किया था। उदयसिंह के उत्तराधिकारियो का रहन-सहन,
अन्य मुस्लिम सरदारो के समान बन गया था। भाषा में
उर्दू और फारसी भाषा के बहुत से शब्द मारवाडी
मारवाड की प्रशासनिक व्यवस्था का भी मोटा राजा
मुगल व्यवस्था के आधार पर पुर्नगठन किया गया था
इत्यादि का स्थान सरकार और परगनो ने ले लिया
इत्यादि कर्मचारी मारवाड मे भी नियुक्त किये जा
चुस्त और चालाक बन गये थे। वे मनसब और
बुरे कार्य करने में नही हिचकिचाते थे। भडारी
स्पष्ट किया जा सकता है। उसने महाराजा
पुत्रो को उत्तेजित किया था। स्पष्ट है मुगल
जिक मान्यताएँ परिवर्तित होने लगी थीं।
समाप्त होने लगी थी। राजवशीय एव
किया गया है। यथास्थान यह स्पष्ट कर दिया गया
राजनैतिक गठबन्धन था।

पारिवारिक कलह, हत्या और षडयत्रो का
किया गया है। विभीषण की भूमिका मे कई पात्र
एक मात्र कारण यह था कि राठौड राजतन्त्र मे

का अभाव था। इसीलिए आन्तरिक क्लेश होते रहे। आन्तरिक क्लेश ने इस राज्य की उन्नति मे समय-समय पर बाधा उपस्थित की थी। मरुधरा मारवाड के शासक जिन्हें लोकप्रिय भाषा मे "बापजी" कह कर सम्बोधित किया जाता था, प्रारम्भ से अन्त तक धर्म एव सस्कृति के रक्षक के रूप मे कार्य करते हैं। भारत की पुरातन परम्परा के अनुकूल वे गाय और ब्राह्मण के सरक्षक बने रहे। महाराजा अजीतसिंह ने जजिया बन्द करवाया। जसवन्तसिंह के जीवन काल मे औरगजेब दारुल हरम को दारुल इस्लाम बनाने की इच्छा को क्रियान्वित करने मे सकोच करता रहा। दुर्गादास राठौड और उसके असख्य साथियों ने धर्मान्ध सम्राट के निश्चय को निष्फल कर दिया था।

प्रस्तुत ग्रन्थ मे मारवाड के भूतपूर्व राज्य की समस्या का वर्णन किया गया है। वर्णन करते समय यह ध्यान रखा है कि समस्त उपलब्ध साधनो का सतुलित ढग से प्रयोग करके वर्णन निष्पक्षतापूर्वक किया जाय। पचोली पाडुलिपि तथा कतिपय फारसी भाषा मे लिखे हुए अप्रकाशित ग्रन्थों का प्रयोग प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक ने सर्वप्रथम किया है। अत पाठकों को यह स्वत ही स्पष्ट हो जाएगा कि मुगल साम्राज्य के उत्कर्ष काल मे मारवाड के राठौड राजाओं ने अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए किन परिस्थितियों मे क्या कार्य किए थे। अत यह अध्ययन रोचक होने के साथ साथ प्रेरक भी है। वीरता, त्याग एव बलिदान का वर्णन जानने के पश्चात् मनुष्य मे स्वतः भावना उत्पन्न होती है कि विषम परिस्थितियों में भाग्यवादी बने रहकर अथवा वाद-विवाद से निराशा पर विजय प्राप्त करना सम्भव नही हो सकता। कर्म करने वाला कर्मठ व्यक्ति ही निराशा को आशा में परिवर्तित करता है।

चन्द्रसेन और जसवन्तसिंह के ज्येष्ठ भ्राता अमरसिंह राठोड तथा उनके परिवार के सम्बन्ध मे जानकारी ख्यातो वशावलियो और अन्य साहित्यिक कृतियो में नही मिलती। इससे यही निष्कर्ष निकाला जायेगा कि समकालीन कवि और लेखक दरबारी साहित्यकार होने के नाते रचना करते समय निष्पक्ष दृष्टिकोण से काम नहीं लेते थे। बीकानेर के इतिहास मे दलपत, मेवाड के इतिहास मे शक्तिसिंह और आमेर के इतिहास मे भगवानदास के सम्बन्ध मे भी तो जानकारी नही मिलती। तात्पर्य यह है कि मारवाड के नहीं अपितु मध्यकालीन राजस्थान के समूचे साहित्यकार सरक्षक की इच्छा के प्रतिकूल अवाछनीय नायक के व्यक्तित्व और कृतित्व का बखान करने के अभ्यस्त नहीं थे। प्रस्तुत ग्रन्थ मे ऐसी भूली बिसराई विभूतियो पर प्रसगवश प्रकाश डाला गया है।

शताब्दियों के सम्पर्क के कारण मारवाड मे मिली-जुली सभ्यता और सस्कृति का प्रारम्भ हुआ था। मालदेव के शासनकाल मे मुगल सम्राट हुमायू का पुस्तकालयाध्यक्ष मुल्ला सुर्ख मारवाड के शासक की सेवा मे आया था। मालदेव के पुत्र मोटा राजा उदयसिंह ने काजी फिरोज को जोधपुर का शहर काजी नियुक्त किया था। उदयसिंह के उत्तराधिकारियो का रहन सहन, खानपान मुगल दरबार के अन्य मुस्लिम सरदारो के समान बन गया था। भाषा में भी सम्मिश्रण हो गया था। उर्दू और फारसी भाषा के बहुत से शब्द मारवाडी भाषा मे सम्मिलित हो गये थे। मारवाड की प्रशासनिक व्यवस्था का भी मोटा राजा उदयसिंह के शासन काल मे मुगल व्यवस्था के आधार पर पुर्नगठन किया गया था। परिणामस्वरूप गढ मडल इत्यादि का स्थान सरकार और परगनो ने ले लिया था। दीवान, अमीन, फौजदार इत्यादि कर्मचारी मारवाड मे भी नियुक्त किये जाने लगे। मारवाड के राठौड चुस्त और चालाक बन गये थे। वे मनसब और जागीर प्राप्त करने के लिए अच्छे बुरे कार्य करने मे नही हिचकिचाते थे। भडारी रघुनाथ का उदाहरण देकर इसे स्पष्ट किया जा सकता है। उसने महाराजा अजीतसिंह की हत्या के लिए उसके पुत्रो को उत्तेजित किया था। स्पष्ट है मुगल सम्पर्क के कारण मारवाड की सामाजिक मान्यताएँ परिवर्तित होने लगी थीं। कूप-मडूकता एव रूढिवादिता शनै शनै समाप्त होने लगी थी। राजवशीय एव अन्तर्जातीय विवाहो का यत्र-तत्र वर्णन किया गया है। यथास्थान यह स्पष्ट कर दिया गया है कि इन विवाहो का आधार राजनैतिक गठबन्धन था।

पारिवारिक कलह, हत्या और षडयत्रो का वर्णन भी प्रस्तुत ग्रन्थ में किया गया है। विभीषण की भूमिका मे कई पात्र दिखाई देते हैं। परन्तु इसका एक मात्र कारण यह था कि राठौड राजतन्त्र मे सुनिश्चित उत्तराधिकार नियम

का अभाव था। इसीलिए आन्तरिक क्लेश होते रहे। आन्तरिक क्लेश ने इस राज्य की उन्नति मे समय-समय पर बाधा उपस्थित की थी। मरुधरा मारवाड के शासक जिन्हें लोकप्रिय भाषा मे "बापजी" कह कर सम्बोधित किया जाता था, प्रारम्भ से अन्त तक धर्म एव सस्कृति के रक्षक के रूप मे कार्य करते हैं। भारत की पुरातन परम्परा के अनुकूल वे गाय और ब्राह्मण के सरक्षक बने रहे। महाराजा अजीतसिंह ने जजिया बन्द करवाया। जसवन्तसिंह के जीवन-काल मे औरगजेब दारुल हरम को दारुल इस्लाम बनाने की इच्छा को क्रियान्वित करने मे सकोच करता रहा। दुर्गादास राठौड और उसके असख्य साथियो ने धर्मान्ध सम्राट के निश्चय को निष्फल कर दिया था।

प्रस्तुत ग्रन्थ मे मारवाड के भूतपूर्व राज्य की समस्या का वर्णन किया गया है। वर्णन करते समय यह ध्यान रखा है कि समस्त उपलब्ध साधनो का सतुलित ढग से प्रयोग करके वर्णन निष्पक्षतापूर्वक किया जाय। पचोली पाडुलिपि तथा कतिपय फारसी भाषा मे लिखे हुए अप्रकाशित ग्रन्थो का प्रयोग प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक ने सर्वप्रथम किया है। अत पाठको को यह स्वत ही स्पष्ट हो जाएगा कि मुगल साम्राज्य के उत्कर्ष काल मे मारवाड के राठौड राजाओ ने अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए किन परिस्थितियो मे क्या कार्य किए थे। अत यह अध्ययन रोचक होने के साथ-साथ प्रेरक भी है। वीरता, त्याग एव बलिदान का वर्णन जानने के पश्चात् मनुष्य में स्वतः भावना उत्पन्न होती है कि विषम परिस्थितियो मे भाग्यवादी बने रहकर अथवा वाद-विवाद से निराशा पर विजय प्राप्त करना सम्भव नही हो सकता। कर्म करने वाला कर्मठ व्यक्ति ही निराशा को आशा मे परिवर्तित करता है।